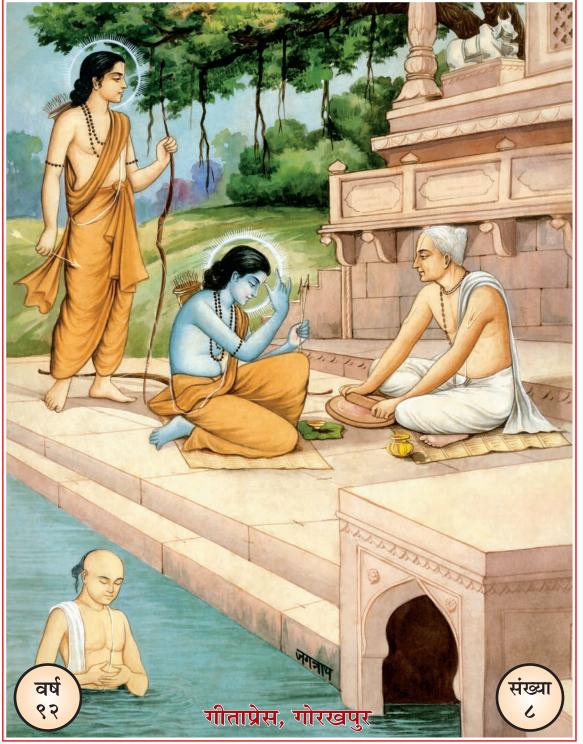
# an cellu



चित्रकूटके घाटपर

मल्य १० रुपये





मुरलीधर

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय वन्दे वन्दनतुष्टमानसमितप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलेश्वर्येकवासं शिवम्।

पूर्णमेवावशिष्यते॥

सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥ संख्या गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, अगस्त २०१८ ई० पूर्ण संख्या ११०१

'अधर धरि मुरली स्याम बजावत'

स्याम

अधर

मुरली बजावत। औ गौरी सुरहि नटनारायन, सुनावत॥१॥ ताही कें, औरन भए रस बस बस करवावत। मैं, जो सिर नाहिं को त्रिभुवन जल थल धुनावत॥ २॥ मुकट कुण्डल मनि स्रवनन देखत नारिनि गिरिधर मुरली प्रभ् धरन नागर कहावत॥ ३॥ श्यामसुन्दर ओठपर रखकर वंशी बजा रहे हैं, सारंग, गौड़, नट-नारायण और गौरी आदि रागोंके स्वर

(आलाप) सुनाते हैं। स्वयं उसी (वंशीध्विन)-की मधुरताके वश हो गये हैं और दूसरोंको भी वश करा रहे हैं। तीनों लोकोंमें जल या स्थलका निवासी ऐसा कौन है, जो (वंशी सुनकर) मस्तक नहीं हिलाने लगता।

(मोहनका) मनोहर मुकुट और रत्नजटित कानोंके कुण्डल देखनेमें स्त्रियोंको (अत्यन्त) प्रिय लगते हैं; सूरदासजीके चतुर स्वामी जो अबतक गिरिधर कहलाते थे, (अब) मुरलीधर कहलाते हैं।[सूरसागर]

हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ राम हरे राम राम राम (संस्करण २,००,०००) कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, अगस्त २०१८ ई० विषय-सूची पृष्ठ-संख्या पुष्ठ-संख्या विषय विषय १- 'अधर धरि मुरली स्याम बजावत'..... ३ १३- कर्म-मीमांसा (श्रीरूपचन्दजी शर्मा) ...... २४ १४- अच्छा पैसा ही अच्छे काममें लगता है [प्रेरक कथा]....... २५ ३- चित्रकृटके घाटपर [आवरणचित्र-परिचय] ...... ६ १५- श्रीरामराज्यकी महिमा (श्रीअर्जुनलालजी बंसल) ...... २६ १६- मानस रोग ( श्रीगोपालदत्तजी सारस्वत)...... २८ ४- महात्माओंका प्रभाव (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ...... ७ १७- श्रीरामचरितमानसमें वर्णित मानस रोग ...... ३० ५- ममताके रोगकी चिकित्सा (मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी १८- अहंकार : विनाशका बीज (डॉ० गो० दा० फेगडे) ........ ३१ १९- संयमका प्रथम सोपान—वाकुसंयम [प्रेरक-प्रसंग] उपाध्याय) [प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गृप्ता] ...... ९ ६- श्रीकृष्ण-लीलाके अन्ध-अनुकरणसे हानि [प्रेषक—श्रीअरुणजी गप्ता] ...... ३२ (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) .. १३ २०- महात्मा पूनतानम् [संत-चरित] (श्रीरामलाल) ...... ३३ ७- पुण्य और पाप ( श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग २१- कामधेनु [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र') ...... ३७ स्वामी श्रीदयानन्दिगरिजी महाराज) ...... १४ २२- क्या सुख-भोग ही जीवन है ? ८- सत् और असत् [साधकोंके प्रति] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ...... १५ [प्रेषक—श्रीहरी मोहनजी] ......४१ २३- भगवान् कृष्णका प्राकट्य (श्रीरामेश्वरजी पाटीदार) ९- मानसिक शक्तिसे रोगोंका उपचार (श्रीलालजी रामजी शुक्ल, एम०ए०) ...... १७ [प्रेषक—श्रीअशोकजी चौरे] ..... ४२ १०- कर्मफलभोगमें परतन्त्रता ...... १९ २४- साधनोपयोगी पत्र ...... ४३ २५- व्रतोत्सव-पर्व [भाद्रपदमासके व्रत-पर्व] .....४५ ११- भक्ति और उसकी प्राप्तिके साधन (श्रीमती विश्वमोहिनीजी, एम० ए०) ...... २० २६- कृपानुभृति ..... ४६ २७- पढो, समझो और करो.....४७ १२- विपत्तियोंका सामना धैर्यसे करें ( श्रीरमेशचन्द्रजी बादल) ...... २३ २८- मनन करने योग्य......५० चित्र-सूची १- चित्रकूटके घाटपर ...... अावरण-पृष्ठ २- मुरलीधर ...... मुख-पृष्ठ ३- चित्रकटके घाटपर ....... (इकरंगा)...... ६ ४- श्रीरामराज्याभिषेक ...... ( " जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥ जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ एकवर्षीय शुल्क विराट जय जगत्पते । गौरीपति रमापते । ₹ २५० ₹ १२५० विदेशमें Air Mail) वार्षिक US\$ 50 (₹3000) Us Cheque Collection पंचवर्षीय US\$ 250 (₹15000) शुल्क Charges 6\$ Extra संस्थापक - ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनमानप्रसादजी पोद्दार सम्पादक —राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित e-mail: kalyan@gitapress.org website: gitapress.org 09235400242/244 सदस्यता-शुल्क — व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखप्र को भेजें। Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु-gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें। अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:श्ल्क पढ़ें।

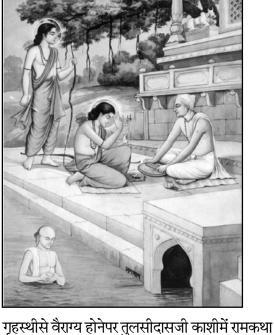
संख्या ८ ] कल्याण याद रखों—ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जिसमें और वह अनन्तगुनी होकर दूर-दूरतक फैल जायगी। कोई सद्गुण न हो, तथा ऐसा भी कोई नहीं, जो दोषोंसे इसलिये यदि किसीमें बुराई प्रकट है, और वह तुम्हारे सर्वथा रहित हो। सभी गुण-दोषमय हैं। किसीमें दोष साथ भी बुरा बर्ताव कर रहा है, तब भी उसके साथ अधिक प्रकट हैं तो किसीमें गुण। ये दोष-गुण प्रकट भलाईका भला बर्ताव करो। भलाईकी इतनी प्रबल धार होते हैं अनेक बाहरी कारणोंसे। हम किसीके सामने हो कि उसमें उसके बुराईके सब पौधे समूल बह जायँ। फिर उनके स्थानमें तुम अपनी भलाईके बीज बिखेर शुभ तथा सत् विषयोंको रखकर उनके सजातीय दो-प्रचुर मात्रामें, जो निश्चितरूपसे भलाई-ही-भलाई गुणोंको—जो छिपे हैं, प्रकट कर सकते हैं और अशुभ तथा असत् विषयोंको रखकर उनके सजातीय दोषोंको उत्पन्न कर दें। प्रकट कर सकते हैं। गुण प्रकट होनेपर उन्हींके अनुसार याद रखो-यदि लोग बुराईके बदले बुराई क्रिया होती है, जिससे उसका तथा उसके सम्पर्कमें करना छोड़ दें तो बुराईकी परम्परा कुछ ही समयमें नष्ट हो जायगी और फिर सभीमें सब ओर भलाई-ही-आनेवाले सभीका न्युनाधिक हित होता है और सुख मिलता है। दोष प्रकट होनेपर भी उन्हींके अनुसार भलाई भर जायगी; क्योंकि बुराईसे बुराई और भलाईसे क्रिया होकर उसका तथा जगत्के लोगोंका अहित होता भलाई उत्पन्न होती है। इसलिये बुराई करनेवालेके साथ है और उन्हें दु:ख मिलता है। अतएव ऐसी कोई चेष्टा जी भरकर भलाई करो, करनेवालेमें भी गुणोंको मत करो, जिससे किसीके अन्दर छिपी हुई बुराई प्रकट खोजकर उनकी तारीफ करो, निन्दा करनेवालेमें भी हो और वह बुरा बन जाय। अपने सदाचरणोंके द्वारा गुणोंको खोजकर उनकी तारीफ करो, गाली देनेवालोंको मनुष्यके अन्दर सोये हुए सदुगुणोंको जगाओ, बुरा आशीर्वाद दो, मारनेवालोंके लिये भगवानुसे प्रार्थना करो आचरण करके दोषों-दुर्गुणोंको मत जगाओ। और अपने मनको सदा ही सद्भावनासे भरा रखो-याद रखों — निन्दा-चुगली करके, गाली देकर या जिसमें वह किसीको बुराईके बदलेमें बुराई करनेकी चुभनेवाली बात सुनाकर अहित और अप्रिय आचरण कल्पना भी न कर सके। करके एवं क्रोध, मान या लोभवश अन्याय्य आचरण याद रखों — जो लोग तुम्हारी निन्दा करते हैं, वे करके किसीके अन्दर सोयी हुई बुराईको जगाओगे और चाहे किसी कारणसे करते हों, तुम्हारा भला ही करते हैं और उनकी की हुई निन्दामेंसे अधिकांश सत्य होती बढ़ा दोगे तो तुम जगत्का बड़ा अमंगल करोगे। फलत: तुम्हारा भी अमंगल निश्चित होगा। इसी प्रकार यदि तुम है और प्रशंसा करनेवालोंकी प्रशंसामें अधिकांश झूठी सच्ची प्रशंसा करके, मधुर प्रिय बात सुनाकर, हितपूर्ण होती है। गहराईसे देखोगे तो इसका स्पष्ट पता चल प्रिय आचरण करके, प्रेम, सौहार्द और हितबुद्धिसे जायगा। अतएव प्रशंसामें भूलकर भी भूलो मत, फूलो न्यायपूर्ण और प्रेमपूर्ण आचरण करके किसीके अन्दर मत और निन्दामें दुखी मत होओ। वरं निन्दापर विचार करो और उसमें जितनी सत्यता हो, उसका तुरंत सोयी हुई भलाईको जगा दोगे तो तुम जगत्का मंगल करोगे और फलत: तुम्हारा भी मंगल अवश्य होगा। संशोधन करके निन्दकका उपकार मानो और बदलेमें याद रखों — जैसा बीज होता है, वैसा ही फल उसकी नि:स्वार्थ सेवा करनेका शुद्ध प्रयत्न करो।

'शिव'

होता है। भलाईके बीज बोओगे तो भलाई पैदा होगी

\_\_\_\_\_ आवरणचित्र-परिचय

# चित्रकूटके घाटपर



तुलसीदासजीने उनसे श्रीरघुनाथजीका दर्शन करानेकी प्रार्थना की। हनुमान्जीने कहा-'तुम्हें चित्रकूटमें रघुनाथजीके दर्शन होंगे।' इसपर तुलसीदासजी चित्रकूटकी ओर चल पड़े। चित्रकृट पहँचकर रामघाटपर उन्होंने अपना आसन

कहने लगे थे। वहाँ उन्हें एक दिन एक प्रेत मिला, जिसने

उन्हें हनुमान्जीका पता बतलाया। हनुमान्जीसे मिलकर

जमाया। एक दिन वे प्रदक्षिणा करने निकले थे। मार्गमें

उन्हें श्रीरामके दर्शन हुए। उन्होंने देखा कि दो बड़े ही सुन्दर राजकुमार घोडेपर सवार होकर धनुष-बाण लिये जा रहे हैं। तुलसीदासजी उन्हें देखकर मुग्ध हो गये, परंतु उन्हें

पहचान न सके। पीछेसे हनुमान्जीने आकर उन्हें सारा भेद बताया, तो वे बड़ा पश्चात्ताप करने लगे। हनुमान्जीने

उन्हें सान्त्वना दी और कहा प्रात:काल फिर दर्शन होंगे। संवत् १६०७ की मौनी अमावस्या बुधवारके दिन

उनके सामने भगवान् श्रीराम पुनः प्रकट हुए। उन्होंने बालरूपमें तुलसीदासजीसे कहा—'बाबा! हमें चन्दन दो।'

हनुमान्जीने सोचा, वे इस बार भी न धोखा खा जायँ, इसलिये उन्होंने तोतेका रूप धारण करके यह दोहा कहा—

चित्रकूटके घाट पर भइ संतन की भीर।

तुलसीदासजी उस अद्भुत छिबको निहारकर शरीरकी

सुधि भूल गये। भगवान्ने अपने हाथसे चन्दन लेकर अपने तथा तुलसीदासजीके मस्तकपर लगाया और

अन्तर्धान हो गये। संवत् १६२८ में ये हनुमान्जीकी आज्ञासे अयोध्याकी

ओर चल पड़े। उन दिनों प्रयागमें माघमेला था। वहाँ कुछ दिन वे ठहर गये। पर्वके छ: दिन बाद एक वटवृक्षके नीचे उन्हें भरद्वाज और याज्ञवल्क्य मुनिके दर्शन हुए। वहाँ उस

समय वहीं कथा हो रही थी, जो उन्होंने सूकरक्षेत्रमें अपने गुरुसे सुनी थी। वहाँसे ये काशी चले आये और प्रह्लादघाट-

पर एक ब्राह्मणके घर निवास किया। वहाँ उनके अन्दर कवित्वशक्तिका स्फुरण हुआ और वे संस्कृतमें पद्य-रचना

लुप्त हो जाते। यह घटना रोज घटती। आठवें दिन तुलसीदासजीको स्वप्न हुआ। भगवान् शंकरने उन्हें आदेश दिया कि तुम अपनी भाषामें काव्य-रचना करो। तुलसीदासजीकी

करने लगे। परंतु दिनमें वे जितने पद्य रचते, रात्रिमें वे सब

नींद उचट गयी। वे उठकर बैठ गये। उसी समय भगवान शिव और पार्वती उनके सामने प्रकट हुए। तुलसीदासजीने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया।शिवजीने कहा—'तुम अयोध्यामें जाकर रहो और हिन्दीमें काव्य-रचना करो। मेरे आशीर्वादसे

तुम्हारी कविता सामवेदके समान फलवती होगी।' इतना कहकर श्रीगौरीशंकर अन्तर्धान हो गये। तुलसीदासजी उनकी आज्ञा शिरोधार्यकर काशीसे अयोध्या चले आये। संवत् १६३१ का प्रारम्भ हुआ। उस साल रामनवमीके

था। उस दिन प्रात:काल श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामचरित-मानसकी रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष, सात महीने, छब्बीस दिनमें ग्रन्थकी समाप्ति हुई। संवत् १६३३ के मार्गशीर्ष शुक्लपक्षमें रामविवाहके दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये।

दिन प्राय: वैसा ही योग था, जैसा त्रेतायुगमें रामजन्मके दिन

इसके बाद भगवान्की आज्ञासे तुलसीदासजी काशी चले आये। वहाँ उन्होंने भगवान् विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णाको श्रीरामचरितमानस सुनाया। रातको पुस्तक

श्रीविश्वनाथजीके मन्दिरमें रख दी गयी। सबेरे जब पट खोला गया तो उसपर लिखा हुआ पाया गया—'सत्यं

Hinखਾਇਜਾ Dਾਲੇਵਰ ਹੈ ਤੋਂ ਦਿਲਾ ਜ਼ਿਲ੍ਹੇਤ: ਆਰੰਡੇਟ! gg/dha ਜ਼ਿਲ੍ਹੇ ਪ੍ਰਤਾਸ਼ਨ ਦੇ ਐਪਜੀ ਜੇ ਮੁਹਾਰ ਤੋਂ ਆਪਨੇ ਜ਼ਿਲ੍ਹੇ ਮੀਤਿਲੀ ਮੀਤੀ ਸ਼ਿਲ੍ਹੇਤ ਦੇ ਜ਼ਿਲ੍ਹੇਤ ਸ਼ਿਲ੍ਹੇਤ ਸ਼ਿਲ੍ਹੇਤ

जो प्रेमी भक्त भक्तिके द्वारा भगवान्को प्राप्त हो सुनकर, उसके अनुसार साधन करते हैं, तो वे श्रवणपरायण

महात्माओंका प्रभाव

जाता है, उस भक्तमें भी भगवान्के वे गुण आ जाते हैं, पुरुष भी मृत्युरूपी संसार-सागरसे तर जाते हैं। जिनकी व्याख्या गीता(१२।१३-१९)-में की गयी संसारमें अनासक्त जो वीतराग पुरुष हैं, उनके

है। ज्ञानके द्वारा जो परमात्माको प्राप्त हो गया है, वह संगसे भी मनुष्य वीतराग हो जाता है। विरक्त—वीतराग पुरुषोंके स्मरणसे चित्तकी वृत्तियाँ एकाग्र हो जाती हैं,

ब्रह्म ही बन गया है, उसके लक्षण गीता(१४।२२— २५)-में बताये गये हैं। महात्माके दर्शनमात्रसे भी बहुत लाभ होता है; क्योंकि

उससे महात्माका स्वरूप हृदयमें अंकित हो जाता है, जिससे

संख्या ८ ]

हृदयके पाप नष्ट हो जाते हैं। महात्मा पुरुष दिव्य ज्ञानकी एक विलक्षण ज्योति हैं, वह दिव्य ज्ञानज्योति समस्त

पापोंको भस्म कर देती है। महात्मा यदि किसीको स्मरण कर लें या कोई महात्माका स्मरण कर ले तो उसके मनमें उनकी स्मृति हो जानेसे भी पाप नष्ट हो जाते हैं। इसी

प्रकार महात्माका स्पर्श प्राप्त हो जानेसे भी पाप नाश हो जाते हैं, चाहे महात्मा किसीको स्पर्श करें, चाहे महात्माका कोई स्पर्श कर ले। जैसे एक ओर अग्नि पड़ी हुई है और दूसरी ओर एक घासकी ढेरी है। अग्निकी चिनगारी उड़कर

घासपर गिरती है तो घास जलकर अग्नि बन जाती है और घास उडकर अग्निमें गिरती है तो भी घास अग्नि बन जाती है, अग्नि अग्नि ही रहती है। वैसे ही अग्निकी भाँति महात्माओंमें सदा ज्ञानाग्नि प्रज्वलित रहती है। उस ज्ञानाग्निके

द्वारा महात्मा पुरुषोंके तो पाप पहले ही नष्ट हो चुके हैं, किंतु जिसका उनके साथ किसी भी प्रकारका संसर्ग हो जाता है, उसके भी पाप नष्ट होते चले जाते हैं। फिर महात्माओं के साथ वार्तालाप करके जो उनके बताये हुए

उद्धार हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है। गीता अध्याय १३ के २५वें श्लोकमें कहा है— अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।

सिद्धान्तोंके अनुसार साधन करता है, उसका संसार-सागरसे

तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥ इसके पूर्व गीतामें यह कहा गया था कि कितने ही तो ध्यानयोगके द्वारा परमात्माका साक्षात्कार करते हैं,

कितने ही ज्ञानयोगके द्वारा और कितने ही कर्मयोगके द्वारा, किंतु जो पुरुष न ज्ञानयोग जानते हैं, न ध्यान-

अज्ञानी हैं, वे भी उन ज्ञानियोंके पास जाकर, उनकी बात

योग जानते हैं और न कर्मयोग ही जानते हैं, मृढ,

तुलसी संगत साधु की, कटै कोटि अपराध॥ एक घडी, आधी घडी या आधीमें भी आधी घडीका

जो महात्मा पुरुषोंका संग है, उसका इतना माहात्म्य है कि उससे करोडों अपराध कट जाते हैं। यह समझें कि एक

जिससे आगे चलकर उसे आत्माका ज्ञानतक हो जाता

है। महर्षि पतंजलिने योगदर्शनके प्रथम पादमें कहा है—

चित्तकी वृत्तियाँ स्थिर हो जाती हैं। ज्ञानी, महात्मा पुरुष

तो वीतराग होकर ही महात्मा बने हैं। तीव्र वैराग्य और

दैवी-सम्पदाके लक्षण तो महात्मामें साधनावस्थामें आ

जाते हैं। दैवी–सम्पदाकी व्याख्या गीताके १६वें अध्यायके

हमारा चित्र आ जाता है। इससे भी बहुत लाभ हो जाता है

और हम महात्माको याद करें तो भी हमें लाभ हो जाता है,

वीतराग पुरुषको याद करनेसे जो लाभ होता है, उससे

अधिक महात्माको याद करनेसे होता है, और उससे भी

अधिक विशेष लाभ श्रीभगवान्को याद करनेसे होता है।

स्मरण करनेयोग्य तो श्रीभगवान् ही हैं। उनकी स्मृतिमात्रसे

मनुष्यका कल्याण हो जाता है। भगवान्में शरीर-शरीरी-

महात्मा पुरुष हमें याद करते हैं तो उनके ध्यानमें

प्रथमसे तीसरेतक तीन श्लोकोंमें की गयी है।

**'वीतरागविषयं वा चित्तम्।'** (योगदर्शन १।३७)

वीतराग पुरुष, जिसके चित्तका विषय है, उसके

घड़ी २४ मिनटकी होती है, आधी १२ मिनटकी और

भेद नहीं है। अत: उनका शरीर दिव्य—अलौकिक चिन्मय है। वह भगवान् ही है, परंतु महात्माका शरीर ऐसा नहीं है। महात्माका शरीर तो पांचभौतिक है। इसीलिये भगवान्को दिव्य-चिन्मय माधुर्य-मूर्ति कहते हैं। उनके दर्शन, भाषण,

स्पर्श सभी आनन्दप्रद और कल्याणकर होते हैं, इसलिये भगवान्के समान तो भगवान् ही हैं। परंतु महात्मा पुरुषका स्मरण-संग भी अत्यन्त लाभदायक है। महापुरुषके संगकी

महिमा बताते हुए कहा गया है— एक घड़ी आधी घड़ी आधीमें पुनि आध।

आधीसे भी आधी यानी चौथाई ६ मिनट की। 'महात्मा' जिनके संगसे, जिनके साथ वार्तालाप करनेसे, दर्शनसे, शब्दसे यहाँ किसी आश्रमसे सम्बन्ध नहीं है। कोई गृहस्थ स्पर्शसे आत्माका सुधार हो, अपनेमें भक्तोंके लक्षण प्रकट होने हों, संन्यासी हों, वानप्रस्थी हों या ब्रह्मचारी हों—जिनमें लगें, गुणातीत पुरुषोंके लक्षण आने लगें तो समझना चाहिये महात्माओं के लक्षण, जो गीतामें बताये गये हैं, मिलते हैं, कि यह महापुरुष है। जब हम महापुरुषोंका संग करनेके वे ही महात्मा हैं। महात्माओंकी महिमा जितनी भी गायी लिये जायँ तो हम यह समझें कि हम एक ज्ञानके पुंजके सम्मुख जा रहे हैं। जैसे सूर्यके सम्मुख जानेसे अन्धकार जाय, थोड़ी ही है। जैसे गंगाजीकी महिमा जितनी भी गायी जाय, उतनी थोड़ी है। गंगाजी सारे संसारका उद्धार तो दूर भाग ही जाता है, किंतु अधिक-से-अधिक प्रकाश कर सकती हैं, किंतु कोई यदि गंगामें स्नान करने ही न होता चला जाता है। हम देखते हैं कि जब प्रात:काल सूर्य जाय, गंगाजलका पान करे ही नहीं, तो इसमें गंगाजीका उदय होता है तब ज्यों-ज्यों सूर्य नजदीक आता है, त्यों-क्या दोष है ? इसी प्रकार कोई महापुरुषोंसे लाभ नहीं ही-त्यों सूर्यके प्रकाशका अधिक असर पडता है। वैसे ही हम जितने ही महात्माओंके समीप होते हैं, उतना ही हमको उठाये तो उसमें महापुरुषका कोई दोष नहीं। एक गंगासे ही सबका कल्याण हो सकता है; क्योंकि अधिक लाभ मिलता है। वे एक ज्ञानके पुंज हैं, उस ज्ञान-शास्त्रमें कहा गया है कि गंगामें स्नान करनेसे उसका पुंजसे हमारे अज्ञानान्धकारका नाश होकर हमारे हृदयमें जलपान करनेसे मनुष्योंके सारे पापोंका नाश हो जाता है भी ज्ञान-सूर्यका प्राकट्य होता है। महात्माओंमें अद्भुत प्रभाव और आत्माका उद्धार हो जाता है। गंगाजीकी भाँति ही होता है। उनके दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालापसे पापोंका महात्मा पुरुष लाखों-करोड़ों पुरुषोंका उद्धार कर सकते नाश होकर और दुर्गुण-दुराचारोंका अभाव होकर सद्गुण-हैं और सारे संसारके मनुष्योंका उद्धार होना भी कोई असम्भव सदाचार आ जाते हैं। अज्ञानका नाश होकर हृदयमें ज्ञान तो है ही नहीं, हाँ, कठिन अवश्य है; क्योंकि उनमें श्रद्धा आ जाता है, जिससे हमें सहज ही भगवत्प्राप्ति हो जाती हुए बिना तो कल्याण हो नहीं सकता और श्रद्धा होना है। यह उन महापुरुषोंका प्रभाव है, जो महापुरुष परमात्माको कठिन है। प्रथम तो महापुरुष संसारमें मिलते ही बडी प्राप्त हो चुके हैं, ब्रह्ममें मिल चुके हैं, या सायुज्य मुक्तिको कठिनतासे हैं; क्योंकि संसारके करोड़ों मनुष्योंमें कोई एक प्राप्त कर चुके हैं। ऐसे महात्मा परमात्मा ही बन जाते हैं।

महापुरुष होता है— जैसे गीताजीमें श्रीभगवान् कहते हैं— मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यति सिद्धये। यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥ हजारों मनुष्योंमें कोई एक ही परमात्माकी प्राप्ति-रूप सिद्धिके लिये प्रयत्न करता है और प्रयत्न करनेवाले सिद्धोंमें भी कोई एक ही मुझको—भगवान्को तत्त्वसे जानता है। भगवान्को जो तत्त्वसे जानता है, वही महात्मा है। प्रथम तो लाखों-करोडोंमें कोई एक महात्मा होता है, फिर उसका मिलना भी बहुत ही दुर्लभ है, मिलनेपर भी उसे पहचानना उससे भी कठिन है। महात्माओंके पहचाननेकी एक साधारण युक्ति यह है कि जैसे अग्निके समीप जानेसे जानेवालेपर

इसीलिये परमात्माके गुण-प्रभाव उनके गुण-प्रभाव हैं, यह समझना ही महात्माको तत्त्वसे समझना है। वास्तवमें महात्माका आत्मा भी परमात्मा ही है, पर हम मानते नहीं, उसे परमात्मासे भिन्न समझते हैं। इसलिये हम महात्माके

भाग ९२

समान नहीं होते। यह समझना भी अन्त:करणकी शुद्धि होनेपर ही होता है। भक्ति-मार्गमें भगवान्से भिन्न रहनेपर भी भक्तोंकी स्थिति विलक्षण होती है। जैसे जीवन्मुक्त ज्ञानीके दर्शन, भाषण, स्पर्शसे मनुष्य पवित्र हो जाता है, वैसे ही भगवद्भक्तके दर्शन, भाषण, स्पर्शसे भी हो जाता है। महापुरुषोंका रहस्य वास्तवमें महापुरुष बननेपर ही समझमें आता है। उनका उद्देश्य सर्वथा अलौकिक और अग्निका कुछ-न-कुछ प्रभाव जरूर पड़ता है, वैसे ही अद्भुत होता है। उनका अपना तो कोई काम रहता ही महात्माके समीप जानेसे महात्माका प्रभाव पड़ता है। जैसे नहीं। संसारमें उनका जो जीवन है या शरीरकी स्थिति है, सरकारके किसी सिपाहीको देखनेसे सरकारकी स्मृति होती वह संसारके हितके लिये ही है। जैसे भगवानुका अवतार है, वैसे ही भगवान्के भक्तके दर्शनसे भगवान्की स्मृति होगी। संसारके उद्धारके लिये ही होता है, वैसे ही महात्मा पुरुषोंका जिनका संग करनेसे अपनेमें दैवी-सम्पदाके लक्षण आयें. जीवन भी संसारके उद्धारके लिये ही है।

ममताके रोगकी चिकित्सा संख्या ८ ] ममताके रोगकी चिकित्सा [ कैकेयी-भरत-प्रसंग ] ( मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामिकंकरजी उपाध्याय ) मनके रोगोंका जो स्वरूप है, उसे रामचरित-है। ममताका अर्थ है—ममत्व, मेरापन, यह वस्तु मेरी है, मानसमें आयुर्वेदकी पद्धतिके अनुसार शरीरके रोगोंसे इस व्यक्तिसे मेरा सम्बन्ध है, यह मेरा है, इत्यादि। इस तुलना करते हुए प्रस्तुत किया गया है। काम, क्रोध, मेरेपनके कारण व्यक्तिके हृदयमें जिस लगावका अनुभव लोभ आदि मुख्य रोगोंके वर्णनके बाद काकभुशुण्डिजी होता है, उसीका नाम ममता है। जिनसे हमें ममता होती जिस रोगका वर्णन करने जा रहे हैं, वह बड़ा विचित्र है, उन्हें जब हम उन्नित करते देखते हैं, तो हमें बड़ी रोग है। यह रोग बहुधा हमें रोग ही प्रतीत नहीं होता, प्रसन्नता होती है। यही एक प्रकारकी अनुभृति हो ऐसा पर है बड़ा भयावह, जिसे कहते हैं 'ममता'। ममताका नहीं है। यह भी होता है कि जिनसे हमारी ममता हो, वर्णन करते हुए, उसकी तुलना शरीरके रोगोंमें 'दाद' से यदि वे हमारी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य करते हैं या की गयी। ममता मनका दाद है। दाद ऐसा विचित्र रोग हमारी भावनाओंका ध्यान नहीं रखते तो हमारे हृदयमें है कि जिसके होनेपर कोई यह नहीं समझता कि वह बड़ी पीड़ा होती है। ममताकी इस वृत्तिको रामचरितमानसके रोगी है। कभी उसको लगता ही नहीं कि यह भी कोई विभिन्न प्रसंगोंमें विविध रूपोंमें प्रस्तुत किया गया है। कष्ट देनेवाला रोग है। जैसे अन्य रोगोंमें स्वस्थ होनेकी गोस्वामीजीने ममताको बडे भयावह रूपमें देखा। चेष्टा दिखायी देती है, वैसी इसमें दिखायी नहीं देती। यह मानसिक दुर्बलताओंके साथ जुड़कर कितना भयंकर परिणाम उत्पन्न करती है, इसकी चर्चा करते हुए वे गोस्वामीजीने ममताकी तुलना जो दादसे की है, इसका कारण बड़ा मनोवैज्ञानिक है। काम, क्रोध, लोभकी कहते हैं-विकृति होनेपर व्यक्ति जब अस्वस्थ होता है, तो उसे 'ममता केहि कर जस न नसावा।' (७।७१।२) इसका स्पष्ट बोध रहता है, परंतु बड़ी विचित्र बात है —संसारमें ऐसा कौन व्यक्ति है, जिसके जीवनमें कि अपनी इस ममताकी ओर व्यक्तिका ध्यान बहुधा ममता आकर उसके यशको नष्ट न कर देती हो, उसपर जाता ही नहीं। यह सोच भी नहीं पाता कि मेरे मनमें कलंक न लगा देती हो। यह ममता व्यक्तिके जीवनको ममता नामका कोई रोग है। ममताकी इस विचित्रतापर कलंकित कर देती है। इस संदर्भमें मानसमें कैकेयी एक गोस्वामीजी एक बड़ा ही सुन्दर व्यंग्यात्मक संकेत देते ऐसी पात्रा हैं, जो बड़ी यशस्वी थीं, परंतु ममताके कारण हैं कि अन्य रोग तो केवल दु:ख ही दु:ख देते हैं, पर उनका यश नष्ट हो गया। यही एक ऐसा रोग है, जिसमें दु:ख एवं सुख दोनोंकी रामराज्य बन गया, लेकिन गोस्वामीजी गीतावलीमें अनुभूति होती है। दादमें खुजलाहट होती है। उसे एक बड़ी अद्भुत बात लिखते हैं कि कैकेयी जबतक खुजलाकर आदमी बड़े सुखका अनुभव करता है और जीवित रहीं तबतक भरतजीने कभी उन्हें माँ कहकर नहीं बादमें जलन होनेपर कष्टका अनुभव भी करता है। ये पुकारा। पढ़कर बड़ा आश्चर्य होता है। कैकेयीजीने श्रीरामको दोनों बातें ममताके साथ भी जुड़ी हुई हैं। एक तो यह पा लिया। उन्होंने रामराज्यमें सहयोग दिया। भगवान् रामने रोग होते हुए भी रोग प्रतीत नहीं होता और सुख एवं कैकेयीजीकी प्रशंसा की है। श्रीलक्ष्मण तो कैकेयीजीके दु:ख दोनोंकी सृष्टि करता है। चरणोंमें बारम्बार प्रणाम करते हैं, पर भरत-जैसे उदार वास्तवमें हम देखते हैं कि कभी-कभी मनुष्य इस सहृदय व्यक्ति जीवन-भर अपनी माँको 'माँ' कहकर न ममताको लेकर स्वयंको अत्यन्त सुखी अनुभव करता पुकारें, यह सुनकर तो बड़ा विचित्र लगता है। लेकिन

[भाग ९२ श्रीभरतकी भूमिका यहाँपर एक वैद्यकी भूमिका है। वे प्रार्थनाका क्या हुआ ? वह सब कहाँ गया ? उनका फल सजग हैं, जानते हैं कि कैकेयीका रोग क्या है और उसे क्यों नहीं मिला ? यहींपर कैकेयीजी और भगवान् श्रीराममें पथ्य क्या देना है? ममता ही कैकेयीका रोग है। ममता मतभेद है। कैकेयीजी कहती हैं कि मेरा अगला जन्म हो दादके समान है। दादका गीलेपनसे बड़ा सम्बन्ध है। व्यक्ति और राम मेरे पुत्र बनें। किंतु भगवान् राम कहते हैं कि माँ, अगर दादवाले अंगको बार-बार गीला करेगा, उसे ठीकसे यदि तुम्हारा अगला जन्म हो गया, तब तो मेरा ईश्वरत्व सुखायेगा नहीं तो वहाँ फिरसे दाद हो जानेकी सम्भावना किसी काम नहीं आया। मेरे ईश्वरत्वसे सबको संसारसे बनी रहेगी। अभिप्राय यह है कि व्यवहारमें शुष्कता मिले मुक्ति मिल जाय और तुम्हें न मिले तो यह तो मेरे लिये तो ममताका गीलापन कम होगा और आर्द्रता मिले तो कलंककी बात होगी और तुम यह जो कहती हो कि गीलापन बढ़ेगा। यही ममताकी प्रकृति है। अगले जन्ममें राम मेरा बेटा बने, तुम्हारा इतना स्नेह और कैकेयीजी बड़ी यशश्विनी थीं। सर्वश्रेष्ठ सुन्दरीके में तुम्हें इतने दिनोंतक प्रतीक्षा कराऊँ ? अगले जन्ममें तुम्हारा रूपमें उनकी सुन्दरताकी कीर्ति फैली हुई थी। वे जितनी बेटा बनूँ तो तुम्हारी पूजाकी क्या सार्थकता रह जायेगी? सुन्दर थीं, उतनी ही ओजस्विनी और तेजोमयी थी। महाराज मुक्ति न मिले तो मेरी सार्थकता नहीं और तत्काल फल न मिले तो तुम्हारी पूजाकी सार्थकता नहीं। भगवान् राम यह दशरथ जब युद्धमें जाते थे तब अन्य रानियाँ उनके साथ नहीं जाती थीं, पर कैकेयीजी रणक्षेत्रमें भी उनका साथ चाहते हैं कि कैकेयीजी यह समझ लें कि मैं उनका ही पुत्र देनेके लिये जाती थीं। पतिके प्रति उनके मनमें प्रगाढ़ अपनत्व हूँ, पर कैकेयीजी यह नहीं समझ पा रही हैं। शरीरको दिखायी देता है। उनकी उदारता भी इतनी प्रसिद्ध थी कि केन्द्र मानकर विचार करनेके कारण उन्होंने यह मान लिया सभी लोग यह कहा करते कि सौतिया डाह सभीमें पाया है कि राम मेरा बेटा नहीं है। वह जो मुझे माँ कहकर जाता है, किंतु कैकेयीजी इसकी अपवाद हैं। पुकारता है, वह तो एक भावका नाता है। उसका जन्म मेरे इस तरह कैकेयीजी स्वभाव, शील, शौर्य और सौन्दर्यसे गर्भसे नहीं हुआ है। मेरे गर्भसे भरतका जन्म हुआ है, तो यशस्विनी थीं, पर यह अनर्थ क्यों हुआ? ममताके इसलिये भरत ही मेरा वास्तविक पुत्र है, राम नहीं। भगवान् रामने कैकेयीजीको उसी जन्ममें माँ कहकर कारण। अगर उनके अन्त:करणसे यह चीज मिट गयी होती, तो इतना बड़ा अनर्थ न हुआ होता। वे ममताके पुकारा और अन्तत: कैकेयीजीको स्वीकार करना ही पड़ा संस्कारको नहीं मिटा पायीं, इस बातको भूल नहीं पायीं कि हाँ, अब मेरा भ्रम दूर हो गया। जिस समय कैकेयीजीने कि भरत मेरा बेटा है। श्रीराम उन्हें 'माँ' कहकर पुकारते भगवान् रामको बुलाकर कहा कि राम, मैंने तुम्हारे पितासे हैं। वे अपनी माँसे भी अधिक सम्मान कैकेयीको देते हैं, दो वरदान माँगे हैं, क्या तुम उन वरदानोंको पूरा कर सकोगे ? पर इतना होते हुए भी कैकेयी सोचती हैं कि अभी तो राम भगवान् रामने पूछा—'माँ, तुमने क्या वरदान माँगा है ?' तो उन्होंने कहा—'एक तो यह कि मेरा पुत्र राजा हो और मेरे नकली बेटे हैं, अगले जन्ममें हों तों हों। और अगले जन्ममें भी कब होंगे, जब मेरे गर्भसे जन्म लेंगे तभी वे मेरे दूसरा यह कि तुम चौदह वर्षके लिये वन जाओ।' भगवान् असली बेटे होंगे। यही कैकेयीजी असलीकी परिभाषा श्रीराघवेन्द्रने कैकेयीजीके चरणोंको पकड़ लिया और गद्गद कण्ठसे बोले—'स्नु जननी''''' 'कैकेयीजीको उन्होंने मानती थीं। उन्होंने मन्थरासे यही कहा कि मैं ब्रह्मासे जननी कहा। भगवान् श्रीरामका अभिप्राय क्या था? माने प्रार्थना करती हूँ कि यदि मेरा अगला जन्म हो तो राम मेरे पुत्र हों। पर क्या कैकेयीजीका अगला जन्म हुआ? न वे कहना चाहते हैं कि माँ, अगले जन्ममें क्यों, लो मैं तो अभीसे तुम्हारा पुत्र बन गया। मेरी जननी तुम्हीं हो। कैकेयीजी उनका अगला जन्म हुआ और न राम उनके पुत्र बने। इसंकात्रातंत्रया च्याहुऑर? इस्प्रवाजीका इतना पूजा अविवास कर्म स्वाता हिः भूम नहीं नहीं, मर्गे पुत्र ता वक्षा कर्

संख्या ८ ] ममताके रोग	की चिकित्सा ११
\$	************************************
भगवान् रामने कहा—'कि वह तो तब पता चलेगा जब	करता है ? उस न बोलनेवाले बालककी भाषाको तो उसे
भरत लौटकर आयेंगे। तुम्हें जो यह भ्रम हो गया है कि	गर्भमें धारण करनेवाली माँ ही समझती है। वह माँके
तुम भरतकी जननी हो, वह भरतके आनेपर दूर हो जायगा	गर्भमें रहकर भी मॉॅंके द्वारा अपनी आवश्यकताओंको पूरा
और तुम जान लोगी कि वास्तवमें तुम भरतकी जननी हो	कराता रहा और जन्मके बाद भी जबतक उसके पास
या मेरी, और सचमुच श्रीभरतकी महानता यही है कि	भाषा नहीं है तबतक वह माँपर ही आश्रित है। माँ उसकी
उन्होंने कैकेयीजीकी दुर्बलताको दूर करनेके लिये एक	प्रत्येक भाषाको समझ लेती है। भगवान् रामने कैकेयीजीसे
सद्वैद्यकी भूमिकाका पूरा निर्वाह किया।	कहा—माँ! तुम मेरी जननी हो, इसका स्पष्ट प्रमाण आज
भगवान् कैकेयीजीको जननी कहकर सावधान करते	मुझे मिल गया। क्या? मेरे मनमें एक विचार आया, पर
हैं। उन्होंने उन्हें माँ कहकर नहीं, अपितु जननी कहकर	डरके मारे बोल नहीं पा रहा था और पूरी अयोध्यामें कोई
पुकारा। साधारणतया लोग समझते हैं कि माँ और जननी	समझ नहीं पाया। केवल तुमने समझा। तुम मेरी जननी न
पर्यायवाची हैं, पर शब्दोंके भी भावनात्मक अर्थोंमें भेद	होती तो मेरे मनकी बातको कैसे जान लेती? भगवान्
रहता है। किसी भी महिलाको जिसके प्रति आपके मनमें	रामका संकेत यह था कि कल ही जब गुरुजीने कहा कि
आदरबुद्धि है, आप माँ कहकर पुकार सकते हैं, पर जननी	तुम्हें अयोध्याका राज्य मिलेगा तो मैं दुखी हो गया और
सबको नहीं कह सकते। जननी तो वही है, जिसके गर्भसे	सोचने लगा कि इस निर्मल वंशमें यही एक अनुचित बात
हमारा जन्म होता है। भगवान् रामने कैकेयीसे कहा कि	हो रही है कि और सब भाइयोंको छोड़कर राज्याभिषेक
तुम तो मेरी जननी हो और बार-बार कह रहे हैं—	एक—बड़ेका होता है। राज्य तो छोटेको ही मिलना चाहिये,
सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥	पर मैं गुरुजीके डरसे नहीं कह पाया। मेरे राज्याभिषेकका
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥	समाचार सुनकर कौसल्या अम्बा प्रसन्न हो गयी। अगर ये
मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।	मेरी जननी होतीं तो मेरे मनकी बात अवश्य समझ लेतीं,
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥	पर नहीं समझ पायीं। तुम समझ गयीं, सचमुच तुम्हीं मेरी
(रा०च०मा० २।४१।७-८, २।४१)	जननी हो। मैं तो यही सोच रहा था कि भरत राजा हो।
—आदिमें, मध्यमें और अन्तमें भी वे बारम्बार	तुमने मेरे हृदयकी भाषाको समझ लिया। माँ! तुम विश्वास
कहते हैं—माँ, मेरी जननी तुम हो। मेरा जन्म तुम्हारे	करो, तुम मेरी माँ ही नहीं मेरी जननी भी हो। मैं तुम्हारा
माध्यमसे हुआ है। मैं तुम्हारा बेटा हूँ। पर कैकेयी तो	बेटा हूँ। कैकेयी ने तो भगवान्की बातोंपर विश्वास नहीं
ममतासे ग्रस्त हैं, वे सोचती हैं कि राम इस तरह बोलकर	किया, लेकिन श्रीभरतने इसे सिद्ध करके दिखा दिया कि
मुझे भुलावा दे रहे हैं। मुझे फुसलाना चाहते हैं कि	सचमुच उनके पुत्र तो श्रीराम ही हैं।
किसी तरहसे मैं अपने शब्दोंको वापस ले लूँ। लेकिन	श्रीभरत यह समझ गये कि कैकेयीके अन्त:करणमें
भगवान् रामका उद्देश्य क्या था? वे तो कैकेयीजीके	ममताका संस्कार नहीं मिट पा रहा है और जबतक उनका
भ्रमको दूर करनेकी चेष्टा कर रहे थे।	यह ममत्व दूर नहीं होगा, तबतक उनका कल्याण नहीं हो
भगवान् रामने कैकेयीजीसे कहा—' माँ, आज सिद्ध	सकता। इसलिये उन्होंने यह निर्णय लिया कि इनके ममत्वको
हो गया कि तुम मेरी जननी हो। क्यों?' भगवान् रामका	दूर करना ही होगा और उनके इस ममतारूपी दादकी
तात्पर्य यह है कि बालक जब बोलने लगता है, तब तो	चिकित्सा उन्होंने अपने शुष्क व्यवहारसे ही प्रारम्भ की।
उसकी भाषाको प्रत्येक व्यक्ति समझ लेता है कि बालक	कैकेयीजीके प्रति उनके शुष्क व्यवहारका अभिप्राय यही
क्या कह रहा है, पर बालक जब बिलकुल नहीं बोल पाता	था कि व्यवहारमें आर्द्रता कैकेयीजीके लिये कुपथ्य है।
तब उसकी इच्छाओं और आवश्यकताओंकी पूर्ति कौन	उनमें अहंताकी समस्या नहीं है। वे सिंहासन अपने लिये

नहीं माँगतीं। वे चाहती हैं कि मेरा बेटा राजा बने। भरत 'ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा।'(७।१०।२) मेरा बेटा है, भरत सिंहासनपर बैठे। यह ममता ही उनकी कैकेयीजी प्रसन्न हो गयीं। उनके मनमें अब कोई दु:ख नहीं रह गया। भगवान् रामने तो श्रीभरतसे कह समस्या है। भरतजी जब निनहालसे लौटकर आये और अयोध्याका समाचार सुना तो समझ गये कि कैकेयीजीको दिया कि भरत यह बहुत अच्छा हुआ। क्या ? सभी भाइयोंमें ममतारूपी दादका रोग हो गया है। उन्होंने तुरंत चिकित्सा आपसमें बँटवारा होता है। इस बँटवारेमें एक बहुत बड़ा प्रारम्भ की, बड़े कठोर शब्दोंमें जोरसे फटकारा, बड़ी तीव्र लाभ यह हुआ कि अभीतक तो कैकेयीजीके बेटे हम दोनों भर्त्सना की और उनके इस शुष्क और कठोर व्यवहारका थे, लेकिन अब उनका नाता तुमसे टूट गया और उनपर बड़ा सुन्दर परिणाम हुआ। कैकेयीजीने जब भरतकी फटकार पूरा अधिकार केवल मेरा है। अब वे केवल मेरी माँ हैं। मेरे और माँके बीच अब तुम तीसरे तो नहीं बनोगे ? श्रीभरतने सुनी तो भरत तो आँखोंसे ओझल हो गये और मनकी आँखोंके सामने राम आ गये। याद आने लगा कि वन जाते कहा- 'नहीं प्रभो! हम तो यही चाहते हैं कि उनके समय रामने क्या कहा था। जिसको मैंने वनवास दिया, अन्त:करणमें इसी सत्यका साक्षात्कार होता रहे कि उनके उसने मुझे क्या कहा और जिसको राज्य देनेके लिये मैंने पुत्र तो एकमात्र श्रीरामको छोड़कर और कोई नहीं है, इतना अनर्थ किया, कुयश लिया, कलंक लिया, विधवा और सचमुच यही ममत्वशून्य स्थिति है। उस ममताके द्वारा कैकेयीजीको कलंक लगा और उनकी ममताको मिटानेके बनी, वह क्या कह रहा है ? रामने तो मुझे जननी कहकर पुकारा था, कहीं रामका सम्बोधन ही तो ठीक नहीं था? लिये ही श्रीभरतने उनसे इतना शुष्क व्यवहार किया, उनके सचमुच मेरा भरत बेटा नहीं है। सचमुच मैंने पुत्रको कलंकका प्रक्षालन किया और अन्तमें जब उनके जीवनसे पहचाननेमें भूल की। अब तो सचमुच संसारमें मेरा कोई ममता मिट गयी, तभी उनका कल्याण हुआ।' भी अपना नहीं है। पतिसे परित्यक्ता, समाजसे तिरस्कृता, इस प्रकार भरतजीने एक कुशल वैद्यके रूपमें कैकेयीजीकी ममताकी दिशा अपनेसे हटाकर रामजीके पुत्रके द्वारा सम्बन्धकी अस्वीकृति। सब जगहसे उनके नाते टूटे हुए हैं। एक आशाकी डोर बँधी हुई थी भरतसे; साथ जोड दी। हमें भी अपनी ममताको परिवार व सगे लेकिन भरतने उसे भी बलपूर्वक तोड़ दिया। सम्बन्धियोंसे हटाकर भगवान् रामसे जोड़ देनी चाहिये। नाता तोड़ देनेके बाद भी भरतजी बड़े सावधान थे। गोस्वामीजी दोहावली रामायणमें कहते हैं कि एक उन्होंने कैकेयीको फिर कभी माँ कहकर नहीं पुकारा? तो जहाँ ममता हो वहाँसे मनको हटा लेना चाहिये और वैद्य जानते हैं कि पथ्य-कुपथ्य सबके अलग-अलग ऐसा न हो सके तो क्या उपाय है? होते हैं। भरतजीने देखा कि एक बार तो इस ममताके कै कर ममता राम सों कै ममता परहेलु॥ संस्कारने इतना बड़ा अनर्थ किया, अब फिरसे मैं यदि या तो ममता रामपर करो या ममताका त्याग करो। माँ कहकर पुकारूँगा तो कुपथ्य पाकर रोग फिरसे जाग सन्दरकाण्डमें भी वर्णन है— उठेगा। इस रोगका क्या ठिकाना, थोडी-सी नमी पाकर जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥ फिरसे उभर सकता है और यदि यह ममता फिरसे उभर सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥ गयी, तो माँका कल्याण नहीं है। इसलिये निर्णय कर माता, पिता, भाई, पुत्र, पत्नी, शरीर, धन, गृह, मित्र लिया कि मॉॅंके जीवनसे ममताको पूरी तरहसे मिटा देना और सम्बन्धी—इन सबके प्रेमरूपी धागोंको एकत्रकर होगा। लंकासे लौटकर भगवान् श्रीरामने भी कैकेयीजीसे डोरी बना लें और उस डोरीको भगवान् रामके पैरके साथ पूछा—'माँ, जाते समय मैंने तुमसे कहा था कि तुम्हारा बाँध दें अर्थात् ममताके सब सम्बन्ध रामसे जोड़ दें। यही बेटा मैं हूँ, अब तुम्हें विश्वास हुआ कि नहीं?' कल्याणका एकमात्र उपाय है। गोस्वामीजी लिखते हैं-[ प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता ]

भाग ९२

श्रीकृष्ण-लीलाके अन्ध-अनुकरणसे हानि संख्या ८ ] श्रीकृष्ण-लीलाके अन्ध-अनुकरणसे हानि ( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ) भगवान् श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम हैं और भगवान् जाता है कि युगल-सरकारके चरणोंके सेवक बन जाओ, श्रीकृष्ण लीलापुरुषोत्तम। दोनों एक हैं। एक ही फिर चोरी-जारी, झुठ-कपट, प्रमाद-आलस्य जो कुछ सच्चिदानन्दघन परमात्मा भिन्न-भिन्न लीलाओंके लिये भी करते रहो, कोई आपत्ति नहीं है। मेरी समझसे ये सारी दो युगोंमें दो रूपोंमें अवतीर्ण हैं। इनमें बड़े-छोटेकी कल्पना बातें अपनी कमजोरियोंको छिपाने, भगवद्भक्तिके नामपर करना अपराध है। श्रीरामरूपमें आपकी प्रत्येक लीला सबके विषयोंको प्राप्त करने, कपट-प्रेमी बनकर पाप कमाने और अनुकरण करनेयोग्य मर्यादारूपमें होती है, रामजीकी भोले नर-नारियोंको ठगकर अपनी बुरी वासनाओंको तृप्त लीलाओंका रहस्य अत्यन्त निगृढ होनेपर भी बाह्यरूपसे करनेके लिये कही जाती हैं। सिच्चदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्ण सबकी समझमें आ सकता है और बिना किसी बाधाके और उनकी आत्मस्वरूपिणी जगज्जननी श्रीराधिकाजीका अपने-अपने अधिकारानुसार सभी उसका अनुकरण कर चरण-सेवक बनकर भी क्या कोई कभी चोरी-जारी आदि सकते हैं, वह सीधा राजमार्ग है, परंतु भगवान्की श्रीकृष्णरूपमें पापकर्म कर सकता है ? भगवान्के सच्चे मनसे लिये हुए की गयी लीलाएँ बाहर-भीतर दोनों ही प्रकारसे निगृढ एक नामसे ही जब सारे पापोंका समूह भस्म हो जाता है और रहस्यमय हैं। इनका समझना अत्यन्त ही कठिन है तो भगवान्के चरणसेवकोंमें तो पाप-प्रवृत्ति रह ही कैसे और बिना समझे अनुकरण करना तो हलाहल विष पीना सकती है ? वैराग्य और त्याग तो भगवद्भक्तिकी आधार-अथवा जान-बूझकर धधकती हुई आगमें कूद पड़ना है। शिला है। जो अपने मनसे विषयोंका त्याग नहीं करता, यह बड़ा ही कण्टकाकीर्ण और ज्वालामय मार्ग है। अतएव भोगोंकी स्पृहा नहीं छोड़ता, वह भगवान्का भक्त ही कैसे बन सकता है ? भक्तको तो अपना सर्वस्व लोक-परलोक सर्वसाधारणके लिये सर्वथा समझने, मानने और पालन करनेयोग्य महान् उपदेश भगवान् श्रीकृष्णकी भगवद्गीता और मोक्षतक भगवान्के चरणोंपर निछावरकर सर्वथा है और सर्वतोभावसे अनुकरण करनेयोग्य भगवान् श्रीरामकी अकिञ्चन बन जाना पड़ता है। भगवत्प्रेमी भोगी कैसे हो मर्यादायुक्त लीलाएँ हैं। सकता है? अतएव जो भगवत्प्रेमके नामपर भोगका जिन लोगोंने बिना समझे-बूझे भगवान् श्रीकृष्णकी उपदेश करते हैं, उनसे और उनके उपदेशोंसे सदा सावधान लीलाका अनुकरण किया, वे स्वयं डूबे और दूसरे अनेक रहना चाहिये। दु:खकी बात है कि श्रीमद्भागवतकी निर्दोष नर-नारियोंको डुबोनेका कारण बने। अग्नि पी जाने, रासपंचाध्यायीका भ्रान्त-अनुकरण करने जाकर कामवासनासे स्त्रियोंसे मिलने-जुलनेमें तो कोई आपात्ति नहीं मानी जाती, पहाड़ अंगुलिपर उठा लेने, कालिय नागको नाथने आदि क्रियाओंका अनुकरण तो कोई क्यों करने लगा और करना यहाँ तो भगवान्के लीला-अनुकरणका नाम लिया जाता भी शक्तिके बाहरकी बात है, अनुकरण करनेवाले तो बस, है, परंतु उस श्रीमद्भागवतके 'स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां सङ्गं चीर-हरण, रासलीला और श्रीराधाकृष्णकी प्रेमलीलाओंका त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् ' 'आत्मवान्को चाहिये कि वह स्त्रियोंके ही नहीं, स्त्रीसंगियोंके संगको भी दूरसे त्याग अनुकरण करते हैं। इन लीलाओंके महान् उच्च आध्यात्मिक भावको समझनेमें सर्वथा असमर्थ होकर अपनी वासनामयी दें।' इस उपदेशपर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। श्रीमद्भागवत वृत्तिको चरितार्थ करनेके लिये इनके अनुकरणके नामपर और श्रीकृष्णप्रेमके एवं माधुर्यरसके मर्मको समझनेवाले वास्तवमें पाप किया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि तो श्रीचैतन्य महाप्रभु थे, जो मधुर रसके उपासक होकर भगवत्प्रेममें वैराग्यकी कोई आवश्यकता नहीं, त्यागकी भी धन और स्त्रीसे सर्वथा दूर रहते थे। जरूरत नहीं। श्रीप्रियाप्रियतमजीके प्रेममें तो केवल शृंगार यद्यपि कई कारणोंसे आजकल प्रकटमें प्राय: ऐसी पाप-क्रियाएँ कम होती हैं, परंतु गुप्तरूपसे इन भावोंका और भोगका ही प्रयोजन है, बल्कि यहाँतक भी कह दिया

प्रचार और प्रसार अब भी कम नहीं है। यह भक्ति और भी सब लोगोंको चेतकर भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य भगवत्प्रेमके विघातक हैं। कवियोंने व्यास-शुकदेवके उपदेशके अनुसार अपने जीवनको बनाना चाहिये।

चाहिये—

मनमानी रचना की; तपस्वी, भक्त और मर्मज्ञ पुरुषोंको छोड़कर शेष गुरु, भक्त और उपदेशक कहलानेवाले

मर्मको न समझकर अपनी-अपनी भावनाके अनुसार

लोगोंने मनमाना कथन और कार्य किया। शृंगारके गन्दे-गन्दे गीतोंमें श्रीकृष्ण और श्रीराधाका समावेश किया गया और दुष्ट विषयी पुरुषोंने इन लीलाओंकी आड़ लेकर पापकी परम्परा चला दी; इससे हिन्दू जातिका जो

घोर अमंगल हुआ है, उसकी कोई सीमा नहीं है। अब पुण्य और पाप

### ( श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज )

असिंतके एकरमें होंड हो भी के हे । अकेर समझ अधि अध्येष्ठ कुर्यंत्री भी अध्येष्ठ कुर्यंत्री कि सम्भाव हो अप्रकार में सिंड हो अप्रकार के समझ अधि अध्येष्ठ कुर्यंत्री कि सम्भाव हो अप्रकार के सिंड हो अप्रकार हो अप्रक्ष हो अप्रकार है अप्रकार हो अप्रकार हो अप्रकार हो अप्रकार है अप्रकार हो अप्रकार हो अप्रकार हो अप्रकार हो अप्रकार है अप्रकार हो अप्रक्त है अप्रकार हो अ

पाप है। पुन: साधन करनेमें विघ्न या प्रतिबन्ध डाले, यही

पुण्य मनके उस धर्मका नाम है, जो कि मनुष्यको सुख उपजाता है। सुख उपजानेवाले या भविष्यमें जो-जो भी कर्म सुख उपजायें, वे सब पुण्य कर्म कहे जाते

हैं। इसी प्रकार पुण्यकी एक ऐसी सूक्ष्म अवस्था है, जो कि मोक्षके सुखकी ओर अग्रसर करती है, जिसमें इस पूर्ण संयमसे जो पुण्य उदय होता है, वह अन्तत: मोक्ष-प्राप्तिका कारण होता है। परन्तु ऐसा पुण्य करनेवालेको

यदि कोई सांसारिक सुख पानेकी इच्छा या संकल्प या कामना न हो तो वह बड़े आरामसे सब पापोंको समाप्त करता हुआ मोक्षमार्गपर अग्रसर हो जायगा और अन्तमें मोक्षको प्राप्त करेगा। पाप मनका वह धर्म है, जो मनके अन्दर सूक्ष्म रूपसे

या अदृष्ट रूपसे बैठा हुआ मनुष्यके दु:खको उपजाता है। पुण्यके समान यह पाप भी कई प्रकारके खोटे कर्मोंसे

उपजता है। वे सब पापकर्म कहे जाते हैं। जैसे पुण्य सूक्ष्म रूपसे मोक्षका दाता होता है; ऐसे ही इन्द्रियोंका असंयम,

मन-बुद्धिका असंयम और शरीरका भी असंयम पापका हेतु है। यह ही पापरूप है। इस पापसे बचकर ही दुर्गतिको जीता जा सकता है। पाप दुर्गतिको देनेवाला है। दुर्गति उसका नाम है, जिसमें दु:खकी मात्रा बहुत अधिक होती

है। जो मनुष्यकी बुद्धिको भ्रष्ट करे और उसको हित-

पापका स्वरूप है। इससे विपरीत पूर्व कहा हुआ पुण्यका स्वरूप है, जो मनुष्यकी बुद्धिको मनुष्यताके स्तरसे नीचे नहीं गिरने देता और मोक्षतक ले जाता है। मनुष्यकी बुद्धिका स्तर तब गिरता है, जबिक मनुष्यके अन्दर उनके काम,

क्रोध इत्यादि विकार और उत्तेजनाद्वारा हित-अहितके बारेमें

विचार करनेकी और समझनेकी बुद्धि खो जाय। जैसे कि पशु-पक्षी, कीट-पतंगमें यह मनुष्यताके स्तरकी बुद्धि नहीं

भगवान्के इन शब्दोंको सर्वथा और सर्वदा याद रखना

द्वारं

काम, क्रोध और लोभ-ये तीन नरकके दरवाजे

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

और आत्माको अधोगतिमें ले जानेवाले हैं, इसलिये इन

नाशनमात्मन:।

(गीता १६। २१)

नरकस्येदं

तीनोंका सर्वथा त्याग कर दो।

भाग ९२

है, इसलिये वह दुर्गति है। मनुष्य होते हुए भी यदि अन्ततक दु:खमें पड़ा रहे, तो यह दुर्गति ही है। यह सब पापका कार्य है। इसलिये वह सब प्रकारके मिथ्या कर्मींको करनेमें प्रेरित वह कर्म करने लग जाय; जो कि दूसरोंकी दृष्टिमें भी न करनेयोग्य माने जाते हैं। ऐसे कर्मोंसे मनुष्यको मोक्षका

मार्ग और अपनी आत्माका सुख मिलना तो दूर रहा; परन्तु संसारमें कोई अच्छा या मनुष्यके स्तरका जन्मतक भी नहीं मिलेगा। कोई नहीं कह सकता कि वह मरनेके पश्चात् किन-किन योनियोंमें जन्म पाता हुआ भयंकर दु:खोंको

सब पापोंसे बचता रहेगा; तभी कहीं मनुष्य-जन्म पाकर अन्तमें पवित्रता-निर्मलता रखता हुआ मोक्षमार्गमें प्रवृत्त हो जायगा अर्थात् मोक्षमार्गपर चढ जायगा और अन्तमें

प्राप्त होता रहेगा। केवल मनुष्यकी बुद्धि रखकर यदि उन

सत् और असत् संख्या ८ ] सत् और असत् साधकोंके प्रति-(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः' लग जाते हैं। यदि वे भी सन्मुख हो जायँ तो अनन्त जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं-(गीता २।१६) श्रीमद्भगवद्गीताके इस वचनानुसार असत्की सत्ता सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासिंह तबहीं॥ नहीं है और सत्का अभाव नहीं होता है। दोनोंका (रा०च०मा० ५।४४।२) निष्कर्ष तत्त्वदर्शी महापुरुषोंने निकाला है। उन्होंने इसका परमात्म-तत्त्वकी प्राप्तिके लिये निराश होना भी अनुभव किया है। जिस तत्त्वको तत्त्वदर्शी महापुरुषोंने एक प्रकारसे महान् अपराध है और वह भी भगवान्के देखा है, वही वास्तविक तत्त्व है। जिस वास्तविकताका प्रति है; क्योंकि भगवान्ने कृपाकर मानव-शरीर उस विनाश अथवा अभाव नहीं होता, उस वास्तविकताका परम तत्त्वको जाननेके लिये ही दिया है, किंतु मनुष्य अनुभव सबको हो सकता है। वास्तविकता सदा-सर्वदा बिना विचारे ही संसारमें फँस गया। इस बातसे दयालु रहती है। उसमें किंचिन्मात्र भी कमी नहीं आती। केवल भगवान्को भी तरस आता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें वे हमारा लक्ष्य उधर न होनेसे ही वह वास्तविक तत्त्व कहते हैं-अप्राप्तकी तरह हो रहा है। द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्। विचार करनेपर हमें दिखता है कि संसार बदलता क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥ है। मनके भाव और इन्द्रियाँ बदलती रहती हैं। जितना (१६।१९) भी मन-बृद्धिसे समझमें आता है, वह सब बदलनेवाला 'उन द्वेष करनेवाले पापाचारी और क्रुरकर्मी नराधमोंको है। प्रतिक्षण परिवर्तनशील है, इसमें किसीको कभी में संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें ही डालता हूँ।' किंचिन्मात्र सन्देह नहीं है। बडे-से-बडे विद्वान्, वैज्ञानिक, और— दार्शनिक और ऊँचे-से-ऊँचे विचारक यह सिद्ध नहीं 'हे अर्जुन! वे मूढ़ मुझको न प्राप्त होकर ही कर सकते कि जितनी वस्तुएँ जाननेमें आती हैं, वे सब जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं, फिर उससे भी नीच गतिको प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते बदलती नहीं हैं। जाननेमें आनेवाली वस्तुएँ बदलती हैं, पर उन्हें जाननेवाला नहीं बदलता। अगर जाननेवाला ही हैं।' बदलता हो तो बदलनेवालेको कौन और कैसे जानेगा? भगवान् आश्चर्य व्यक्त करते हैं-इससे सिद्ध होता है कि जाननेवाला बदलता नहीं। वह आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि। वास्तविक तत्त्व नित्य, सदा, सर्वत्र और सबका है, मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥ उसीको परमात्मा कहते हैं। (गीता १६।२०) अहो! ये लोग अबतक मुझे प्राप्त नहीं कर सके परमात्मापर तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त महापुरुषोंका जितना अधिकार है, उतना ही अधिकार साधारण-से-साधारण और अधम गतिको प्राप्त कर रहे हैं। भगवान्को प्राप्त पुरुषका भी है। महापुरुष 'तत्त्वज्ञ' और साधारण व्यक्ति न करना महती हानि है। (जिसका फल भोगना पड़ता 'तुच्छ' क्यों कहलाते हैं? महापुरुषोंने तत्त्वकी ओर है।) श्रुति कहती है-ध्यान दिया है, इसलिये वे तत्त्वज्ञ कहलाते हैं। साधारण परमात्मतत्त्वको जाने बिना अन्य काम करना आत्मघात है। आत्मघाती महापापी होता है। उपनिषदोंमें व्यक्ति सत्-तत्त्वसे विमुख होनेसे अपनेको पतित मानने

भाग ९२ कहा गया है— कुछ भी आचरण करते हैं, उसमें परिवर्तनकी नहीं केवल परिमार्जनकी आवश्यकता है। जिन्हें हम अपना या अपने **'ये के चात्महनो जनाः'** (ईशोपनिषद् ३) 'आत्महत्यारे अधोगतिको प्राप्त होते हैं।' लिये मानते हैं, उनको थोडा भी परिवर्तित कर देना हमारे हाथकी बात नहीं। इन पदार्थोंको हम साथ लाये नहीं, इस तत्त्वको सबसे पहले जानना चाहिये; क्योंकि मानव-जीवनका सबसे प्रथम लक्ष्य यही है। साथ ले जा सकते नहीं, मनके अनुकूल बना सकते नहीं मनुष्य-शरीरके प्राप्त करनेका उद्देश्य संग्रह और और जैसे हैं-वैसे भी रख सकते नहीं। यदि हमारा भोग है ही नहीं— अधिकार चलता तो हम पदार्थींको नष्ट होनेसे बचा लेते, शरीरको वृद्ध-रोगी न होने देते और मरने भी नहीं देते। 'एहि तन कर फल बिषय न भाई।' इस तत्त्वको जाने बिना यदि मानव-शरीर चला अतः जिनपर हमारा अधिकार न चले, उन प्राकृत गया तो महान् हानि है। उस हानिकी पूर्ति किसी रीतिसे पदार्थींको अपना मानना सरासर मूर्खता है। कभी होनेवाली नहीं है और परमात्माको छोड़कर अपने और अपने लिये तो केवल परमात्मा है। किसी-न-किसीका आश्रय लेते ही रहना पडेगा, अर्थात् गोस्वामीजी कहते हैं-सदा ही परतन्त्रता भोगनी पड़ेगी। इसलिये समझदार ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥ व्यक्तिको चाहिये कि आज ही उस तत्त्वको समझनेके (रा०च०मा० ७। ११७। २) लिये तैयार हो जाय। उत्कट जिज्ञासा होनेपर इसे आज यह जीव ईश्वरका अंश है। अतएव अविनाशी, ही प्राप्त किया जा सकता है। भगवान्की घोषणा है— चेतन, निर्मल और स्वभावसे ही सुखकी राशि है। अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् भी यही कहते हैं— ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि॥ मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥ (गीता ४।३६) 'यदि तू अन्य सब पापियोंसे भी अधिक पाप (१५1७) करनेवाला है, तो भी तू ज्ञानरूप नौकाद्वारा नि:सन्देह अर्थात् इस देहमें वह सनातन जीवात्मा मेरा ही सम्पूर्ण पाप-समुद्रसे भलीभाँति तर जायगा।' अंश है। (और वही) प्रकृतिमें स्थित मन और पाँचों संसारमें जितने भी पापी हैं, वे तीन भागोंमें विभक्त इन्द्रियोंका आकर्षण करता है। उत्तम मान्यता तो यह है किये जा सकते हैं। एक तो पापकृत् (पापी), दूसरे कि परमात्मा भी मेरे लिये नहीं, किंतु मैं परमात्माके लिये पापकृत्तर (पापियोंमें बडे पापी) और तीसरे पापकृत्तमः हैं। मुझे संसार, प्रकृति और परमात्मा किसीसे कुछ भी (सम्पूर्ण पापियोंमें भी सबसे बड़े पापी)। महान्-से-नहीं चाहिये। जो किसीसे कुछ नहीं चाहता, उसे महान् पापी भी क्यों न हो, ज्ञानरूपी नौकामें बैठकर परमात्मा अपना 'मुकुटमणि' बना लेते हैं। शीघ्र ही पाप-समुद्रसे तर जाते हैं। परमात्माका अंश यह जीव होकर तुच्छ प्राकृत अपना कौन है? पदार्थोंकी इच्छा करके अपना पतन करता है; जनमता, सामग्री, सामर्थ्य, समय और समझ—ये चारों हमें मरता और दु:ख पाता है। यदि हिम्मत करके यह अपने मिले हैं, केवल सदुपयोग करनेके लिये। इन्हें अपनी या मालिक परमात्माको पहचान ले (संसार बदलनेवाला है, अपने लिये मानना इनका दुरुपयोग करना है। और परमात्मा रहनेवाले हैं) तो निहाल-कृतकृत्य हो वर्णाश्रम, योग्यता एवं शास्त्राज्ञाके अनुसार हम जो जाय। यह विद्या उत्कट जिज्ञासामात्रसे प्राप्त होती है।

मानसिक शक्तिसे रोगोंका उपचार संख्या ८ ] मानसिक शक्तिसे रोगोंका उपचार ( श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम०ए० ) जबसे मानवने बोलना और सोचना सीखा, तबसे है। तन्त्रोपचार उतना ही पुराना है, जितना मानव-जातिका इतिहास। भारतवर्षमें यह वैदिक-कालसे आज उसने अपनी आधिभौतिक और आधिदैविक आपत्तियोंके निवारणके उपाय भी सोचे। मनुष्यको जब किसी प्रकारका दिनतक चला आ रहा है। यूरोपमें प्राचीन यूनानी इसमें रोग हो जाता है तो वह स्वभावत: उसका निराकरण अपने विश्वास करते थे और बीसवीं शताब्दीमें नेन्से नगरमें आस-पासमें मिलनेवाली वस्तुओंके द्वारा करनेकी चेष्टा इमील कुए नामक साधक तन्त्रोपचारके द्वारा ही हजारों मानसिक और शारीरिक रोगोंकी चिकित्सा करते थे। करता है। इस प्रकार अनेक प्रकारकी ओषधियोंका आविष्कार हुआ। मनुष्यके कुछ रोग ऐसे भी होते हैं, जिनकी उसे तन्त्रोपचारको आधुनिक मनोविज्ञानकी भाषामें 'निर्देशन चिकित्सा-विधि' (Suggestion Therapy) कहते हैं। निर्देशन कोई भी ओषधि दिखायी नहीं देती, तब वह ऐसी किसी मनुष्यके अचेतन मनको प्रभावित करता है। मनुष्यका यही सत्ताकी दयाका आह्वान करता है जो उसे उस दु:खसे मन है जो उसकी आन्तरिक, मानसिक और शारीरिक बचाये। ये सत्ताएँ भूत-प्रेत, देवी-देवता अथवा ईश्वरके रूपमें मान ली जाती हैं। समाजके कुछ लोग अपने जीवनको क्रियाओंको संयोजित करता है। किसी व्यक्तिको समझाने-इनकी समीपता प्राप्त करनेमें लगा देते हैं। ये समाजके बुझानेसे हम केवल उसके चेतन मनको ही प्रभावित करते पंडा अथवा पुरोहित कहलाते हैं। ये लोग समाजके बाकी हैं। इस मनमें शरीरकी भीतरी क्रियाओंको चलानेकी शक्ति लोगोंके द्वारा अधिक सम्मानित रहते हैं और उनके विश्वासपात्र नहीं है और यह मनुष्यके शारीरिक और मानसिक रोगोंका बन जाते हैं। अपनी नि:स्वार्थता और समाज-सेवामें तत्परताके निवारण नहीं करता। अतएव यह स्वाभाविक ही है कि कारण उन्हें ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है कि जो उनके यह मन मन्त्रकी शक्तिमें विश्वास भी न करे। मनुष्यका शब्दको विशेष शक्ति दे देती है। ऐसे ही लोगोंके वाक्य चेतन मन तार्किक होता है। तर्क किसी भी रचनात्मक कल्पनाको ठहरने भी नहीं देता। अतएव तर्कयुक्त बातसे मन्त्र-तन्त्र बन जाते हैं। किसी भी मन्त्रमें शक्ति लानेके लिये मन्त्रज्ञाताको कोई भी स्वास्थ्यवर्धक अथवा रोगनिवारक कार्य नहीं होते। साधनाकी आवश्यकता होती है। यह साधना उस मन्त्रके किसी भी व्यक्तिको किसी रोगसे मुक्त करनेके लिये द्वारा मनको बलवान् बनानेकी साधना है। मन्त्र इच्छाशक्तिको आवश्यक है कि उसके मनमें यह बात जमा दी जाय कि बलवान् बनानेका साधन है। जिस मनुष्यकी इच्छाशक्ति वह उस रोगसे मुक्त हो जायगा। किसी प्रकारकी प्रगतिके बलवान् है, वह विपत्तिमें पड़े हुए व्यक्तिको, शारीरिक लिये मनुष्यके मनके विचारोंकी दशा रचनात्मक बना देना रोगसे पीड़ित व्यक्तिको अथवा किसी मानसिक व्याधिमें आवश्यक है। विश्वास मनुष्यके मनकी चंचलताको रोककर उलझे हुए व्यक्तिको अधिक सहायता कर सकता है। उसे आशावादी दिशामें मोड़ देता है और इससे मनुष्य न इच्छाशक्तिका बल रखनेवाला व्यक्ति दूसरे व्यक्तिके केवल रोगमुक्त हो जाता है, वरं प्रगतिशील भी बन जाता है। मनपर ऐसा प्रभाव डालता है कि उसीके अनुसार दूसरा विश्वास विचारके परे वस्तु है। जब विचार शान्त व्यक्ति सोचने लगे। जैसा मनुष्यका मन होता है, वैसा हो जाता है तभी विश्वास उत्पन्न होता है। विचार ही उसका शरीर बन जाता है। यदि कोई व्यक्ति अपने विचारको शान्त नहीं कर सकता। इसके लिये व्यक्तिके जीवनसे निराश हो गया हो तो उसे घातक रोग शीघ्र अचेतन मनको प्रभावित करना आवश्यक है। मनुष्यका ही पकड़ लेते हैं और यदि मरते हुए व्यक्तिको भी जीनेके अचेतन मन प्रेमके द्वारा अथवा तन्त्रके द्वारा प्रभावित होता है और जब अचेतन मन प्रभावित हो जाता है तब लिये आशान्वित कर दिया जाय तो वह जी जाता है। उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक तथ्य तन्त्रोपचारका आधार वह अपनी अपार शक्ति मनुष्यके व्यक्तित्वको दे देता है।

भाग ९२ \*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* \*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* इसी शक्तिके कारण चमत्कारिक बातें मनुष्यके शरीरमें साधनाएँ करते रहते थे। ये साधनाएँ यौगिक कहलाती और उसके जीवनमें उपस्थित होती हैं। हैं। डॉक्टर दुर्गाशंकर नागर दिनमें तीन बार प्रार्थना करते आधुनिक कालमें तन्त्रोपचारमें अग्रगण्य नाम थे और शामकी प्रार्थनामें सभी रोगियोंको बुलाते थे। यह बेलजियमके प्रसिद्ध समाज-सेवक मेस्मरका है। उन्होंने प्रार्थना दूसरी प्रार्थनाओंसे लम्बी होती थी। इसी समय एक विशेष प्रकारकी साधना की थी। इस साधनाके रोगीके अचेतन मनको शान्त वातावरण उत्पन्न करके कारण वे अनेक मानसिक और शारीरिक रोगियोंको सिन्नर्देशके द्वारा प्रभावित किया जाता था। इस प्रभावसे रोगमुक्त कर देते थे। उनके यहाँ पचासों रोगी उनके न केवल मानसिक रोगी, वरं शारीरिक रोगी भी अपने बनाये हुए एक टबनुमा यन्त्रके आस-पास बैठते और रोगसे मुक्त हो जाते थे। बहुत दूरके रोगी उनके पत्र अथवा उसके ऊपरी हिस्सेको पकड़े रहते थे। मेस्मर एक तारके द्वारा ही प्रभावित होकर स्वास्थ्य लाभ कर लेते विशेष प्रकारके लाल गाउनको पहनकर आता था और थे। दीपनारायणसिंह एक ही प्रकारकी दवा सभी एक काँचके डंडेसे उन रोगियोंको छूता था। उसके छूते रोगियोंको देते थे, जिसे वे प्रतिदिन छुआ करते थे। कभी-ही हिस्टीरिया रोगसे पीड़ित व्यक्ति उभाने लगते थे और कभी वे रोगियोंको सम्मोहित भी करते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे उनका रोग दूर हो जाता था। डॉ० फ्रायडने उपर्युक्त प्रकारकी चिकित्साको रोगीके यह बात आजसे लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पहलेकी लिये हितकर नहीं बताया। इस विधिको 'निर्देशन-विधि' है। अभी हालमें ही आक्सफोर्डके डिलावार इन्स्टीट्यूटके कहा जाता है। इससे रोगी थोड़े समयके लिये रोगमुक्त हो संचालक डिलावार महोदयने भी एक ऐसी मशीन बनायी, जाता है; परंतु इससे उसके रोगका केवल दमनमात्र होता जिसके छुए रहनेपर अनेक प्रकारके असाध्य रोग नष्ट है। वह एक बार अन्तर्धान होकर फिरसे उसी रूपमें अथवा हो जाते थे; परंतु जिस प्रकार मेस्मर महोदयके अनेक रूपान्तरित होकर बाहर आता है। फ्रायडने यह बात नेन्सेमें शत्रु उसके जीवनकालमें ही हो गये, उसी प्रकार देखी, जहाँ वह इमील कुएसे उसकी विशेष प्रकारकी डिलावारके भी शत्रु इंगलैंडमें हो गये। डिलावारपर चिकित्सा-प्रणाली सीखने गया था। उसने देखा कि नेन्सेमें मुकदमा भी चला जिसमें उसे काफी आर्थिक क्षति उठानी आये हुए हिस्टीरिया रोगी बार-बार अपने रोगको लेकर आते पड़ी, फिर भी उसका मनकी अद्भुत शक्तिमें विश्वास हैं। फ्रायडने इसीसे असंतुष्ट होकर अपनी मनोविश्लेषण नहीं बदला। डिलावारने गेहूँके पौधोंकी बाढ़पर प्रयोग पद्धति निकाली। उनके कथनानुसार निर्देशन-विधि रोगीके करके यह बताया कि मनुष्यके भले अथवा बुरे विचार मनको निर्बल बनाती है और रोगकी जटिलताको बढ़ाती है। न केवल मानवको वरं पेड-पौधोंको भी प्रभावित करते जर्मनी प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्पेंगर महोदय और हैं। मनुष्य अपने आशीर्वादसे किसी व्यक्तिको जटिल इंगलैंडके डॉ॰ विलियम ब्राउन डॉ॰ फ्रायडके उक्त रोगसे मुक्त कर सकता है और अपनी बद्दुआओंसे उसे कथनको एकांगी बताते हैं। डॉ० फ्रायड जडवादी थे। मृत्युके मुखमें पहुँचा सकता है। भारतवर्षमें विश्वासके अतएव वे मनकी किसी ऐसी शक्तिमें विश्वास नहीं करते द्वारा रोगमुक्तिके दो प्रयोग उल्लेखनीय हैं। एक उज्जैनके थे जो सामान्य तार्किक विचारसे सिद्ध न हो सके, परंतु स्व० डॉ० दुर्गाशंकर नागरद्वारा और दूसरा लखनऊके किसी तथ्यकी सत्यताका निर्णय वास्तविक प्रदत्तोंके स्व० दीपनारायण सिंहद्वारा। इन दोनों व्यक्तियोंने रोगियोंकी आधार पर ही किया जा सकता है। डॉ॰ विलियम ब्राऊन सेवाके लिये विशेष प्रकारकी साधना की थी। जिन पिछली लड़ाईमें सिपाहियोंकी मानसिक चिकित्सा करते थे। उन्होंने हजारों रोगियोंकी सफल चिकित्सा की। इसमें रोगियोंको सबसे अधिक इनकी संस्थाओंमें लाभ हुआ, वे प्राय: अनेक प्रकारके मानसिक रोगी थे। उनके वे निर्देशन और मनोविश्लेषण दोनों विधियोंसे काम लेते Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha शारीरिक रोग भी मनीजात थे। ये व्यक्ति विशेष प्रकारकी थे। उन्होंने किशोर बालकोको उनको जटिल आदतीस

कर्मफलभोगमें परतन्त्रता संख्या ८ ] मुक्त करनेमें इस विधिका विशेषरूपसे प्रयोग किया। आत्माके सम्पर्कमें आते ही रोगीका मन उसी प्रकार बदल जाता है, जिस प्रकार एक चुम्बकके समीप आते ही एक तन्त्रोपचार-विधिमें दो बातें आवश्यक हैं। पहली चिकित्सकका अपनी साधनामें विश्वास और दूसरी साधारण लोहेके टुकड़ेमें भीतरी परिवर्तन हो जाता है। महान् पुरुषकी समीपतासे सामान्य व्यक्तिकी शक्तियाँ रोगीकी चिकित्सकपर श्रद्धा। अपनी मन्त्रशक्तिमें विश्वास बढ़ानेके लिये चिकित्सकको कुछ साधनाएँ करनी पड़ती उसी प्रकार एकमुखी हो जाती हैं, जिस प्रकार चुम्बककी हैं। ये साधनाएँ विभिन्न देश तथा समाजकी संस्कृतिके समीपतासे लोहेके टुकड़ेके अणु एकमुखी हो जाते हैं।

अनुसार भिन्न-भिन्न होती हैं। कभी-कभी साधक किसी बाहरी सत्ताको स्वीकार करता और उसको आधार

चिकित्सा अथवा तान्त्रिक चिकित्साकी वैज्ञानिकता बनाकर इच्छा-शक्तिको मन्त्रद्वारा मजबूत बनानेकी चेष्टा सिद्ध की है। मनुष्यके अचेतन मनकी भाषा हमारी करता है और कभी-कभी वह सीधे ही मनको रोकनेका अभ्यास करता है। यह निश्चित है कि बिना तप और

सामान्य भाषासे भिन्न होती है। जो बातें चेतन मनको निरर्थक दिखायी देती हैं, वे अचेतन मनके लिये सार्थक होती हैं। इस प्रकार रोगीको रोगसे मुक्त करनेके लिये उसको लिटा करके अर्धसुप्त अवस्थामें पहुँचाकर पास देना सार्थक होता है। इसी तरह भूतसे पीड़ित व्यक्तिका

त्यागके मनोबल नहीं बढ़ता। अनेक दिनोंके अभ्याससे मन्त्रमें वह शक्ति आती है, जिससे साधक दूसरे व्यक्तिके मनको विशेषरूपसे प्रभावित कर सकता है। जहाँतक रोगीकी श्रद्धाकी बात है, यह चिकित्सकके

झाडुना-फूँकना अथवा उसपर गंगाजल छिडुकना उपयोगी व्यक्तित्वपर निर्भर करती है। श्रद्धाका पात्र वही व्यक्ति होता है। कभी-कभी ताबीज बाँधनेसे भी ये लाभ होते हो सकता है, जो परोपकारी, तपस्वी और त्यागी है। श्रद्धा हैं। किसी तीर्थयात्रामें जाना, यज्ञ-होम करना, अचेतन मनके लिये विशेष अर्थ रखते हैं। ये सभी क्रियाएँ

मनुष्यके अचेतन मनको प्रभावित करती है और उसके कारण मनुष्य अपने अनजाने ही अपने निराशावादी विचारोंसे मुक्त हो जाता है। फिर उसके अचेतन और चेतन दोनों ही मन रचनात्मक कार्यमें लग जाते हैं। डॉ॰ विलियम ब्राऊनका कथन है कि किसी भी दैविक होता वरं सामान्य लोगोंका भी लाभ होता है।

रोगीके अचेतन मनको प्रभावित करने और उसका आत्मविश्वास बढानेके उपाय हैं। प्रत्येक धार्मिक व्यवहारमें इन्हें स्थान है और इनके द्वारा न केवल रोगियोंका लाभ

कर्मफलभोगमें परतन्त्रता -

कर्मबन्धनमें जकड़ा हुआ यह अखिल जगत् परिवर्तनशील तो है ही, जीवको नीच योनियोंमें भी जाना

इस प्रकार डॉ॰ विलियम ब्राऊनने विश्वासके द्वारा

पड़ता है। यदि जीव कर्मपरतन्त्र न होकर स्वतन्त्र होता तो यह परिस्थिति सामने क्यों आती। भला, स्वर्गमें रहने

और अनेक प्रकारके सुख भोगनेकी सुविधाको छोड़कर विष्ठा एवं मूत्रके भण्डारमें भयभीत होकर रहना कौन

चाहता है ? त्रिलोकीमें गर्भवाससे बढ़कर दूसरा कोई नरक नहीं है। गर्भवाससे भयभीत होकर मुनिलोग कठिन तपस्यामें तत्पर हो जाते हैं। गर्भमें कीड़े काटते हैं। नीचेसे जठराग्नि ताप पहुँचाती है। निर्दयतापूर्वक बँधे रहना

पड़ता है। गर्भसे बाहर निकलते समय भी वैसे ही कठिन परिस्थिति सामने आती है; क्योंकि निकलनेका मार्ग जो योनियन्त्र है, वह स्वयं दारुण है। फिर बचपनमें नाना प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं। विवेकी पुत्र किस सुखको

देखकर स्वयं जन्म लेनेकी इच्छा कर सकते हैं; परंतु देवता, मनुष्य एवं पशु आदिका शरीर धारण करके किये हुए अच्छे-बुरे कर्मका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। तप, यज्ञ और दानके प्रभावसे मनुष्य इन्द्र बन सकता है

और पुण्य समाप्त हो जानेपर इन्द्र भी धरातलपर आते हैं—इसमें कोई संशय नहीं है। (महर्षि व्यास)

भक्ति और उसकी प्राप्तिके साधन ( श्रीमती विश्वमोहिनीजी, एम० ए० ) सामान्यतः भक्ति अपनेसे किसी भी बड़े पुरुष या भक्तिके भेद देवताके प्रति आदर-श्रद्धाके भावका नाम है, किंतु अधिकतर सामान्यतः शास्त्रकारोंने शास्त्रोंमें भक्तिके प्रमुखतः दो भेद किये हैं--१-गौणी-भक्ति और २-पराभक्ति। इस शब्दका प्रयोग केवल ईश्वरके प्रति श्रद्धा अथवा उपासनाके अर्थमें किया जाता है। इसलिये मनसे श्रीप्रभुका भगवानुकी महिमा और दया-वत्सलता आदिके दर्शन, भावनासे सेवन, नेत्रोंसे श्रीभगवत्-प्रेमी संतोंका और स्मरणसे साधकके हृदयमें भक्तिकी जो प्रथम अवस्था प्रभु-प्रतिमा, चित्रादिकोंका दर्शन, मुखसे श्रीभगवान्की उदित होती है, उसीको गौणी भक्ति कहते हैं। उपासना स्तुति, सुयशयुक्त उनके चरित्रोंका कीर्तन, गुण-गान आदि एवं योग आदिसे गौणी भक्तिका विकास होता है। भक्तिके अंगके रूपमें गृहीत होते हैं। संकीर्तन-सामृहिक भजनसे मनकी प्रवृत्तियाँ पवित्र होने लगती हैं और फिर साधक एकान्त-सेवन करने लगता श्रीमधुसूदनसरस्वतीके मतानुसार भागवत-धर्म-सेवनसे द्रवीभूत चित्तकी सर्वेश्वरके प्रति जो अविच्छिन्न है। उस दशामें उसके अन्त:करणके रजोगुण तथा वृत्ति है, वही भक्ति है-तमोगुण कुछ दब जाते हैं और सत्त्वगुणका विकास होता है। उसमें गम्भीरता, मौन, मितभाषण एवं अन्तर्मुखी भगवद्धर्माद्धारावाहिकतां गता। दुतस्य वृत्तिका आरम्भ हो जाता है। एकान्तमें उसको स्वतः सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते॥ सविकल्प-समाधिका अनुभव होने लगता है। (भक्तिरसायन १।१।३) उत्तम भक्तिका स्वरूप स्पष्ट करते हुए श्रीरूप भक्ति-साधनामें अन्त:करण प्रभु-गुणगान तथा गोस्वामीजी कहते हैं-नाम-जपसे स्वतः शुद्ध हो जाता है और उसकी

### अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृता। आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥ (भक्तिरसामृतसिन्धु १।१।११) 'जिस भक्तिमें आराध्यके अतिरिक्त किसी अन्यकी

अभिलाषा न हो; जो ज्ञान तथा कर्मसे आवृत न हो और

जिनमें कृष्णकी अनुकूलता प्राप्त करते हुए उनका चिन्तन-मनन किया जाय, वही भक्ति उत्तम है।' महर्षि शाण्डिल्यने इस सम्बन्धमें अपना मत प्रकट करते हुए कहा है—

**'सा परानुरक्तिरीश्वरे'** (शांडिल्यभक्तिसूत्र १।२) नारदजीके मतसे अपने समस्त कर्मींको भगवानुको समर्पित करना और उनका थोड़ा-सा भी विस्मरण होनेपर परम व्याकुल होना ही भक्ति है। यह अमृतस्वरूप है—

सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च। (नारदभक्तिसूत्र २।३) गोस्वामी तुलसीदासने भक्तिकी विशेषता इस प्रकार बतलायी है—

जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥

(रा०च०मा० ३।१६।२)

चंचलता नष्ट हो जाती है। जब अनुरागका आरम्भ होता है तो बिना तार-के-तारकी तरह प्रभुके साथ साधकका सम्बन्ध हो जाता है और गंगा-यमुनाके संगमकी भाँति भक्त और भक्तवत्सलका अप्रच्छन्न रूपसे संयोग हो जाता है। तब जैसे धाय (दाई) बालकको माताके पास

िभाग ९२

भक्तके हृदयमें अनुराग उत्पन्न करती हुई उसे आगे बढ़ाती है। ऐसी ही दशामें भक्तके मनमें जगत्से वैराग्य उत्पन्न होता है, और ज्यों-ज्यों उसका वह वैराग्य दृढ़ और प्रगाढ़ होता है, त्यों-त्यों प्रभुमें अचल प्रीति होती जाती है और भक्त अपनेको पूर्णरूपसे प्रभुपाद-पद्ममें समर्पित कर देता है। यहीं पराभक्तिका प्रारम्भ होता है। गौणी-भक्तिके दो भेद हैं (१) वैधी और (२)

ले जाती है, उसी प्रकार भक्तिभावना प्रभु-कृपा-प्राप्त

रागानुगा। जहाँ शास्त्रोंका शासन-नियम, निर्धारण, स्वीकार करते हुए भक्ति की जाती है, वह वैधी-भक्ति कहलाती है। श्रीहरिके उद्देश्यसे शास्त्रोंमें जो क्रियाएँ प्रतिपादित

हैं, वे वैधी भक्तिके मार्गमें मान्य हैं और ये क्रियाएँ

भगवान्के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करनेके लिये तथा उनके

	की प्राप्तिके साधन त्युक्त स्वरूपक स्वरूप
केवल कृष्णके प्रेमकी कामना रहती है, वह रागानुग	
भक्ति कहलाती है; जैसे—	और रसिकदेव भक्ति-सिद्धान्तमणि दोहा ७२ में <i>'दशधा</i>
मन ते सकल बासना भागी। केवल राम चरन लय लागी	
यह भी दो प्रकारकी होती है—(१) कामरूप	•
भक्ति और (२) सम्बन्धरूपा भक्ति। मैं भगवान्का पित	। भक्ति है और इसके पूर्व नवधा-भक्तिको स्वीकार किया
हूँ, माता हूँ या सखा हूँ, दास हूँ—आदि-आवि	र गया है। श्रीमद्भागवत (७।५।२३)-में भी भक्तिके
भावनाओंसे भावित होकर यथोचितरूपसे रागमयी सेव	ा नव साधन निर्दिष्ट किये गये हैं—
करना, सम्बन्धरूपा भक्ति कहलाती है।	श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
कामरूपा भक्ति वह है, जिसमें उपर्युक्त प्रकारक	T अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
कोई सम्बन्ध नहीं रहता, केवलमात्र भगवान्की सेव	ा तुलसीदासजीने विनयपत्रिकामें निम्नलिखित भक्तिके
करके उन्हें सुखी बनानेकी वासना ही समस्त चेष्टाओंकं	ो साधनोंको स्वीकार किया है—१-विरति, २-विवेक, ३-
प्रेरित करती है। उस वासनासे भावित होकर रागमर्य	ो सत्संग, ४–रामकृपा और ५–राम–नाम।
सेवा निरन्तर अनुष्ठित होती रहती है। इसके भी दं	ो श्रीरामचरितमानसमें लक्ष्मणजीके पूछनेपर भगवान्
प्रकार हैं। पहली है सम्भोगेच्छारूपी केलि, अर्थाव	। श्रीरामने श्रीमुखसे बड़े ही स्पष्ट शब्दोंमें भक्ति-प्राप्तिके
क्रीड़ा-सम्बन्धी अभिलाषायुक्त भक्ति सम्भोगेच्छामयं	
कहलाती है। दूसरी है—तत्तद्भावेच्छामयी—व्रजदेवियोंकी	ो २-श्रुतिके अनुसार स्वधर्म-पालन, ३-सन्तोंके चरण-
अपनी–अपनी अभीष्ट भाव–माधुर्यकी कामनापर आधारि	न कमलोंमें प्रीति, ४-भगवद्भजनमें दृढ़ नेम, ५-अपना
भक्तिको तत्तद्भावेच्छामयी कहा जाता है।	समस्त सांसारिक सम्बन्ध भगवान्में ही समझना, ६-
<b>साधन</b> —भक्तिके स्वरूपको और भी अधिव	
स्पष्ट करनेके लिये तथा भक्तिकी प्राप्तिके लिये भक्तिवे	<ul> <li>एवं दम्भ न रखना, ८-सर्वथा निष्कामभावसे भगवान्के</li> </ul>
साधनोंपर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है	
सामान्यत: शास्त्रकारोंने भक्तिके ग्रन्थोंमें अनेक प्रकारवे	3 3
भक्तिके साधनोंका वर्णन किया है। अध्यात्मरामायणकार	_
भक्तिकी प्राप्तिके लिये १४ प्रकारके साधनोंको बताय	•
है—१-श्रवण, २-रूपासक्ति, ३-कीर्तन, ४-पूजासक्ति	
५-नामासक्ति, ६-ज्ञानवृत्ति, ७-भगवदवलम्ब, ८-सन्तवृत्ति	
९-सर्वस्वभाव, १०-तितिक्षावृत्ति, ११-कार्पण्यवृत्ति, १२-	
वैराग्यवृत्ति, १३-अनन्यवृत्ति और १४-शुद्ध प्रेमासिक	
आचार्य श्रीरामानन्दस्वामीजी कहते हैं कि 'सबवे	
प्रति सब प्रकार सहृदयताकी रक्षा तथा अर्थ, धर्म, काम	
मोक्ष आदि सब प्रकारका कल्याण प्रदान करनेवाल	
उदार-कोर्ति श्रीहरिका श्रवण, कीर्तन, उल्लासपूर्वव	
स्मरण, चरणसेवा, अर्चन-वन्दन, दास्य, सख्य औ	
आत्म-समर्पण इन नौ प्रकारोंकी भक्ति कही गयी हैं। र	•••
ही भक्तिके नौ साधन स्वीकार किये गये हैं। भक्तिकालवे	रा०च०मा० ३।१६।७-८)

िभाग ९२ \* \*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* यहाँ 'श्रवणादिक नवधा भक्ति'से गोस्वामीजीको हो जाती है। साथ ही इसमें भगवान्के प्रति प्रगाढ़ निश्चय ही भागवतोक्त नवधा भक्ति ही अभीष्ट है। प्रेमासक्ति भी आ जाती है, जिसके फलस्वरूप भागवत-उनकी कृतियोंसे स्थल-स्थलपर उनके उत्कृष्ट उदाहरण भक्तिकी भी प्राप्ति होती है। महाभारतकारका मन्तव्य है भी उपलब्ध होते हैं। रामचरितमानसके सिद्धान्त-कि जो लोग मन-वचन और कर्मसे पितर, देवता, गुरु, अतिथि, गौ-ब्राह्मण, पृथ्वी और माताकी पूजा करते हैं, भाष्यकार श्रीकान्तशरणजीकी सम्मतिमें वाल्मीकिने श्रीरामके निवासयोग्य जो चौदह स्थान बतलाये हैं, उन स्थानोंके वे लोग विष्णुभगवान्की ही पूजा किया करते हैं।' प्रारम्भिक नव स्थानोंको इन नौ भक्तियोंके उदाहरणके छठा साधन गद्गद कण्ठसे भगवान्का गुण-कीर्तन करना है। यह साधककी प्रबल भक्ति-भावनाका रूपमें स्वीकार किया जा सकता है। भक्तियोगमें निर्दिष्ट उपर्युक्त लक्षण भक्तिका तीसरा सूचक है। भगवान्की गुणावली गाते-गाते उसके हृदयमें साधन—संतोंके चरणकमलोंमें प्रीति कहा गया है। उनकी प्रगाढ़ स्मृति हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप यथार्थत: संतोंके चरणोंमें प्रेम होनेपर भगवत्कथा-उसका शरीर पुलिकत और वाणी अवरुद्ध हो जाती है और उसकी आँखोंसे प्रेमानन्दकी अविरल अश्रधाराएँ श्रवणका सुअवसर उपलब्ध होता है। उनके सम्पर्कसे प्रवाहित होने लगती हैं। भगवान्को निरन्तर वशीभूत काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकार दूर होते हैं, हृदयमें सात्त्रिकता आती है, जिसके फलस्वरूप हृदय स्वच्छ रखनेवाले ऐसे बड्भागी भक्तोंका भी मानसमें वर्णन हुआ एवं निर्मल होकर भगवत्प्रेमसे परिपूरित हो जाता है। है। ये भक्त जहाँ कहीं भी भगवान्के गुणोंका गान करते इस प्रकार संत एवं सत्संगकी महिमाको स्पष्टरूपमें रहते हैं, भक्तवत्सल भगवान् भी वहाँ निश्चय विद्यमान स्वीकार किया गया है। संतजन भगवान्पर अनन्यभावसे रहते हैं। आश्रित रहते हैं और निरन्तर भगवच्चर्चामें निरत रहते सातवाँ साधन कामादि मद एवं दम्भसे रहित होना कहा गया है। वस्तुत: जब साधक अपने हृदय-मन्दिरसे हैं, अत: उनकी दिनचर्यासे प्रभावित होकर साधकोंके दोष दूर होते हैं। उनमें धीरे-धीरे सब सद्गुण आ जाते काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, दम्भ, पाखण्ड हैं और उन्हें स्वरूप-ज्ञानपूर्वक भगवद्भक्तिकी प्राप्ति आदि मनोविकारोंको पूर्णतया निष्कासित कर देता है, तब निश्चय ही उसके अन्त:करणमें भगवान् स्वत: पूर्ण होती है। वस्तुत: संत-समाज सब गुणोंकी खान है। जैसे पारस पत्थरके स्पर्शसे लोहा भी स्वर्णके रूपमें परिणत प्रेम-प्रतिष्ठाके साथ विराजमान हो जाते हैं। हो जाता है, वैसे ही संतोंकी संगतिसे दुर्जन भी सज्जन तब लगि बसत जीव उर माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं।। बन जाते हैं। अत: गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अनेक निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।। स्थलोंपर सत्संगकी महिमाका मार्मिक एवं प्रभावोत्पादक (रा०च०मा० ५।४४।५) यहाँ भी श्रीमुखसे कामादि दोषोंके निराकरण करनेपर वर्णन किया है और संतोंकी अनुकूलताको भक्तिप्राप्तिका ही अपना निवास कहा गया है; क्योंकि कपट-छल-छिद्रसे आत्यन्तिक आवश्यक साधन माना है। चौथे साधन मन, वचन एवं कर्मसे भगवद्-भजनमें रहित निर्मल हृदयमें ही श्रीभगवान् सदा निवास करते हैं। दृढ़ नेमके सम्पन्न होनेपर शीघ्र ही भगवत्-कृपा एवं सर्वथा निष्कामभावसे भगवान्के शरणागत होकर भजन भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है। तुलसीदासजीने इस साधनका करना भक्तिका आठवाँ साधन है। मन-वचन-कर्मसहित उल्लेख अन्यत्र भी किया है। पाँचवें साधन अर्थात् अनन्यभावसे शरणागत होकर जो भगवान्का कामनारहित अपने समस्त सांसारिक सम्बन्ध-गुरु, पिता, माता, भजन करता है, ऐसे अनन्यभक्तके निष्काम हृदयमें वे सदा बन्धु, पतिदेव आदिको भगवान्में ही समझनेसे साधकके विश्राम करते हैं; क्योंकि ऐसे भक्त ही भगवान्का नित्य-हदनामें त्रंतप्रक्तो प्रं**ष्टिकारमञ्ज**ं रहेव मेक्कि आण्रताह लालुकु स्वीप्त निकास मिल्न क्रिक्ट हैं ए ( समे परक रहिन्छ पेह्न एं रहेव मेक्कि आण्रताह लालुकु स्वीप क्रिक्ट से ए ( समे परक रहिन्छ पेह्न पेट्न प

विपत्तियोंका सामना धैर्यसे करें ( श्रीरमेशचन्द्रजी बादल ) संसार शाश्वत दु:खालय है, यहाँ आनेवालेको दु:ख, बुद्धिमानी है। समस्याओंपर शान्त मनसे सोचें, विचार कष्ट, विपत्तियाँ सहन करनी ही पड़ती हैं। श्रीराम, कृष्ण, करें, अपने बुजुर्गों, शुभचिन्तक सम्बन्धियों, मित्रोंसे चर्चा महावीर, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद, स्वामी दयानन्द, महात्मा करें, परामर्श लें और धैर्य रखते हुए समस्याओंका गांधी आदि महापुरुषोंके जीवन संकटों और विपत्तियोंसे निराकरण करनेके लिये सतत प्रयत्नशील रहें। इस प्रकार कुछ प्रतीक्षा करनेके बाद हमें सफलता मिलेगी। '*हारिये* भरे हुए थे, पर वे संकटोंकी तनिक भी परवाह न करते हुए अपने कर्तव्य-मार्गपर अविचल और अबाध गतिसे अग्रसर न हिम्मत'को सदैव स्मरण रखिये और साहसके साथ होते रहे। फलत: वे अपने उद्देश्यमें सफल हुए और आज सामना करिये। समय बदलता है और विश्वास रिखये कि बुरे समयके बाद निश्चित ही अच्छा समय आयेगा। संसार उनकी महिमाका गान करता है। विपत्तियों एवं कठिनाइयोंसे जूझनेमें ही हमारा पुरुषार्थ है। यदि हम कोई विपत्तियोंसे डरकर, हिम्मत हारनेपर विपत्तियोंका वेग महत्त्वपूर्ण कार्य करना चाहते हैं तो उसमें अनेक आपत्तियोंका कम नहीं होता, बल्कि साहस-हिम्मतके साथ उनका मुकाबला करनेके लिये हमें तैयार ही रहना चाहिये। सामना करनेपर ही संकट दूर होता है। जिन्होंने इस रहस्यको समझकर धैर्यका आश्रय ग्रहण सुख सपना दुःख बुदबुदा दोनों ही मेहमान। किया है, संसारमें वे ही सुखी समझे जाते हैं। धैर्यकी इनका आदर कीजिये जो भेजे भगवान्॥ परीक्षा सुखकी अपेक्षा दु:खमें ही अधिक होती है। विपत्तियोंमें अपना मनोबल कमजोर मत करिये। महापुरुषोंकी यह विशेषता होती है कि दु:खोंके आनेपर आपदाओंमें खुश रहना सीखना चाहिये। चिन्ताग्रस्त, वे हमारी तरह अधीर नहीं हो जाते। देवी कुन्ती तो निराश और परेशान रहकर आप अपनी और परिवारके सदस्योंकी शान्ति नष्ट न करें अपितु हर हालमें सन्तुष्ट

विपत्तियोंका सामना धैर्यसे करें

भगवान्से विपत्तिका ही वरदान माँगती हैं, क्योंकि भगवान्का सच्चा स्मरण विपत्तिमें ही होता है। वे कहती हैं— और खुश रहना सीखिये। विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो। नाशयते धैर्यं' (२।६२।१५) अर्थात् शोक धैर्यका भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥ मनुष्य जीवन भी प्रकृतिकी तरह परिवर्तनशील है। नाश करता है। शोक, दु:ख और संकटके समय हमारी जिस प्रकार प्रकृतिमें समयानुसार परिवर्तन होते रहते हैं, धैर्य (धीरज) धारण करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। उसी प्रकार जीवनमें भी परिवर्तन होते रहते हैं। सुख-धैर्य नष्ट हो जानेपर अधीरतामें हम जो भी कार्य करते

संख्या ८ ]

हैं, वे अनुचित होते हैं। वस्तुत: शोकमें, आर्थिक संकटमें दु:ख, लाभ-हानि, उन्नति-अवनति, यश-अपयश, सम्पत्ति-विपत्ति आदि सभी प्रकारकी परिस्थितियोंका अथवा प्राणान्तकारी भय उपस्थित होनेपर जो अपनी सामना मनुष्यको करना ही पडता है। इन परिस्थितियोंसे बुद्धिसे दु:ख-निवारणके उपायका विचार करते हुए धैर्य कोई नहीं बच सकता है। सुखमय परिस्थितियोंमें हम धारण करता है, उसे कष्ट नहीं उठाना पड़ता है। शान्त और खुश रहते हैं, जबिक दु:ख-शोक, संकट, सदैव स्मरण रखें कि प्रत्येक समस्याका समाधान भी होता है। समाधानका हल निकालनेके लिये धैर्य न छोड़ें विपत्ति और कुसमयमें हमारा चित्त अधीर हो जाता है, आकुलता बढ़ जाती है, मन अशान्त रहता है। यह और ईश्वरसे प्रार्थना करें। सीताजीसे जब हनुमान्जी मिले मनोदशा हमारे लिये घातक हो जाती है। उचित तो यही तो वे बहुत विचलित थीं। हनुमान्जीने कहा—हे माता! हृदयमें है कि हम विपरीत परिस्थितियोंमें थोड़ा सहनशील बनें, धैर्य धारण करो और सेवकोंको सुख देनेवाले श्रीरामजीका मनको शान्त रखें और धैर्य (धीरज)-के साथ सामना स्मरण करो **'कह किप हृदयँ धीर धरु माता। सुमिरु** करें। आपत्तियोंके उपस्थित होनेपर धैर्य रखना ही *राम सेवक सुखदाता॥*'(रा०च०मा० ५।१५।९)।

वाल्मीकीय रामायणमें कहा गया है 'शोको

कर्म-मीमांसा
(श्रीरूपचन्दजी शर्मा)

मनुष्यका मन एक क्षणके लिये भी शान्त नहीं कर्मोंको भस्म कर देती है।
रहता। मनकी दौड़ बहुत लम्बी होती है। मनकी दौड़का अगले श्लोकमें श्रीकृष्णजी कहते हैं कि इस क्षेत्र असीमित है। वह हर क्षणमें कार्यरत रहता है। संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला कुछ भी नहीं

रहता। मनकी दौड़ बहुत लम्बी होती है। मनकी दौड़का अगले श्लोकमें श्रीकृष्णजी कहते हैं कि इस क्षेत्र असीमित है। वह हर क्षणमें कार्यरत रहता है। संसारमें ज्ञानके समान पिवत्र करनेवाला कुछ भी नहीं मनपर नियन्त्रण करना कठिन कार्य है— है, उस ज्ञानको बुद्धिरूप योगके द्वारा शुद्ध अन्तःकरण ऋषि-मुनियोंने कर्मके तीन भेद बताये हैं, जैसे— हुआ पुरुष आत्मामें अनुभव करता है।

ऋषि-मुनियोंने कर्मके तीन भेद बताये हैं, जैसे— (१) क्रियमाण कर्म—'मैं कर्म करता हूँ'— इस प्रकारकी बुद्धि रखकर मनुष्य जो कर्म करता है, उसे क्रियमाण कर्म कहते हैं। जीवनकालमें जो–जो कर्म होते हैं वे सब क्रियमाण कर्म कहलाते हैं।

क्रियमाण कर्म कहते हैं। जीवनकालमें जो-जो कर्म होते हैं, वे सब क्रियमाण कर्म कहलाते हैं। कर्मका स्वरूप—मनुष्य कर्म करनेमें पूर्ण रूपसे स्वतंत्र है। चित्तमें जो अशुभ संस्कार होते हैं, वे अशुभ कर्म करनेके लिये मन ललचाते हैं। बुद्धि उसका मार्गदर्शन

करती है, जिसका निश्चय दृढ़ होता है। वह प्रलोभनोंसे

आकर्षित नहीं होता। शुभ कर्मोंसे स्वर्ग मिलता है और अशुभ कर्मोंसे नरकमें जाना पड़ता है। क्या करना और क्या नहीं करना है, इसका निर्णय लेनेमें मनुष्य स्वतंत्र है। (२) संचित कर्म — क्रियमाण कर्म तो हर समय होते रहते हैं, उनमें कुछ तो भोग लिये जाते हैं और शेष

इकट्ठा होते रहते हैं। इस प्रकार चित्तरूपी गोदाममें एकत्रित हुए कर्मोंको संचित कर्म कहते हैं।

संचित कर्मोंका स्वरूप—कर्मका भण्डार अक्षय है, भोगनेसे कभी वह भण्डार समाप्त नहीं होता। कर्मोंका

संचित कर्मों का स्वरूप—कर्मका भण्डार अक्षय है, भोगनेसे कभी वह भण्डार समाप्त नहीं होता। कर्मों का नियम यह है कि—'नामुक्तं क्षीयते कर्म कोटिकल्प-शतैरिप।' अर्थात् कोई भी कर्म करोड़ों कल्प बीतनेपर भी

बिना भोगे नष्ट नहीं होता। ऐसी स्थितिमें जीवकी मुक्तिका प्रश्न ही पैदा नहीं होता। कर्मका भण्डार अक्षय है। उसको भोगते–भोगते जीव अनादिकालसे चौरासी लाख योनियोंमें शरीर धारण करता चला आ रहा है, फिर भी कर्मका

भण्डार अक्षय ही बना रहता है।

साधन — जीवको मुक्ति मिल सकती है, श्रीकृष्णजी
अर्जुनसे कहते हैं—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥

(३) प्रारब्ध कर्म—प्राणीके चित्तमें अनेक जन्मोंके संचित कर्मोंके भण्डार पड़े रहते हैं, जो भोगनेपर भी समाप्त नहीं होते। प्रारब्ध कर्मका अर्थ है—जो कर्म गत जन्मोंमें किये गये हैं और जिनका फल इस जन्ममें

श्रुति कहती है—'ऋते ज्ञानान मुक्तिः।

जितेन्द्रिय पुरुषके तत्त्वतः आत्मज्ञानसे भस्मसात् होता है।

भोगना पडता है अर्थात् इस जन्ममें जो सुख-दु:ख

ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती। कर्मोंका भण्डार केवल

[भाग ९२

भोगने होते हैं, उन्हें प्रारब्ध कहते हैं। शास्त्र कहता है— अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं। मनुष्यसे जो भी अच्छे-बुरे कर्म किये जाते हैं, वे भोगे बिना समाप्त नहीं होते। कर्म-सिद्धान्त—प्राणियोंका समस्त जीवन तथा

प्राणियोंके जन्म-जरा, मरण तथा रोगादि विकारोंका मूल है। सुखस्य दुखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा। अहं करोमीति वृथाभिमानः

मरणोत्तर जीवन कर्म-तन्तुओंसे बँधा हुआ है। कर्म ही

स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः॥ (अध्यात्मरामायण २।६।६) अर्थात् सुख और दुःख देनेवाला कोई व्यक्ति नहीं है। दुष्ट बुद्धिवाले लोग कहते हैं कि मैंने उसको कितना दुःख दिया। कुछ ऐसा कहते हैं कि मैने यह भी किया,

लोग अपने-अपने कर्मोंके सूत्रोंमें बँधे हुए हैं।

नव ग्रह और कर्मवाद—ज्योतिषशास्त्र कहता

वह भी किया। यह झूठा अभिमान है। वास्तवमें सभी

है—'सम्पूर्ण जगत् ग्रहोंके अधीन है। ग्रह ही कर्मोंका फल देनेवाले होते हैं। सृष्टि-पालन तथा संहार भी

ग्रहोंके अधीन है। कर्मके फलदाता ग्रह ही हैं।'

महाभारतमें एक प्रसंग आता है, जिसमें देवी

अर्थात् हे अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनको भस्म कर देती है, वैसे ही ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण

नहीं करते हैं। साथ ही अपना ही किया हुआ कर्म

शुभाशुभ फलका उत्पादक होता है।

दिया—'हे महाभागे! ग्रह और नक्षत्र मनुष्यके शुभ और संसारमें कोई सुखी है, कोई दुखी है, कोई धनी अशुभकी सूचना देनेवाले हैं। वह स्वयं कोई काम नहीं है तो कोई कंगाल, कोई स्वस्थ है तो कोई बीमार। इस करते हैं। प्रजाके हितके लिये ज्योतिष्चक्र अर्थात् ग्रह- विचित्रताके सम्बन्धमें वैदिक शास्त्रका समाधान यह है नक्षत्र-मण्डलके द्वारा भूत और भविष्यके शुभाशुभ कि सुख-दु:ख. सम्पत्ति-विपत्ति इत्यादि सब कुछ

प्राय: उन ग्रह-नक्षत्रोंकी ही आराधना करते रहते हैं.

क्या उनकी मान्यता ठीक है?' भगवान शंकरने उत्तर

टोपीकी कीमत सिर्फ दो पैसे लेते। इनमेंसे जो याचक पहले मिलता, उसे एक पैसा दे देते। बचे हुए एक पैसेसे पेट भरते। इस प्रकार जबतक दोनों पैसे बरत नहीं जाते, तबतक नयी टोपी नहीं सीते। भजन ही करते रहते।

इनके एक धनी शिष्य था, उसके पास धर्मादेकी निकाली हुई कुछ रकम थी। उसने एक दिन पूछा, 'भगवन्! मैं किसको दान करूँ?' महात्माने कहा, 'जिसे सुपात्र समझो, उसीको दान करो।' शिष्यने रास्तेमें एक गरीब अन्धेको देखा और उसे सुपात्र समझकर एक सोनेकी मोहर दे दी। दूसरे दिन उसी रास्तेसे शिष्य

एक गरीब अन्धेको देखा और उसे सुपात्र समझकर एक सनिको मोहर दे दी। दूसरे दिन उसी रास्तेसे शिष्य फिर निकला। पहले दिनवाला अन्धा एक दूसरे अन्धेसे कह रहा था कि 'कल एक आदमीने मुझको एक सोनेकी मोहर दी थी, मैंने उससे खूब शराब पी और रातको अमुक वेश्याके यहाँ जाकर आनन्द लूटा।'

शिष्यको यह सुनकर बड़ा खेद हुआ। उसने महात्माके पास आकर सारा हाल कहा। महात्मा उसके हाथमें एक पैसा देकर बोले—'जा, जो सबसे पहले मिले उसीको पैसा दे देना।' यह पैसा टोपी सीकर

कमाया हुआ था। शिष्य पैसा लेकर निकला, उसे एक मनुष्य मिला; उसने उसको पैसा दे दिया और उसके पीछे-पीछे चलना शुरू किया। वह मनुष्य एक निर्जन स्थानमें गया और उसने अपने कपड़ोंमें छिपाये हुए एक मरे पक्षीको

निकालकर फेंक दिया। शिष्यने उससे पूछा कि 'तुमने मरे पक्षीको कपड़ोंमें क्यों छिपाया था और अब क्यों निकालकर फेंक दिया?' उसने कहा—'आज सात दिनसे मेरे कुटुम्बको दाना-पानी नहीं मिला। भीख माँगना

मुझे पसन्द नहीं, आज इस जगह मरे पक्षीको पड़ा देख मैंने लाचार होकर अपनी और परिवारकी भूख मिटानेके लिये उठा लिया था और इसे लेकर मैं घर जा रहा था। आपने मुझे बिना ही माँगे पैसा दे दिया, इसलिये अब मुझे इस मरे पक्षीकी जरूरत नहीं रही। अतएव जहाँसे उठाया था, वहीं लाकर डाल दिया।'

शिष्यको उसकी बात सुनकर बड़ा अचरज हुआ। उसने महात्माके पास जाकर सब वृत्तान्त कहा। महात्मा बोले—'यह स्पष्ट है कि तुमने दुराचारियोंके साथ मिलकर अन्यायपूर्वक धन कमाया होगा; इसीसे उस धनका

दान दुराचारी अन्धेको दिया गया और उसने उससे सुरापान और वेश्यागमन किया। मेरे न्यायपूर्वक कमाये हुए एक पैसेने एक कुटुम्बको निषिद्ध आहारसे बचा लिया। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। अच्छा पैसा ही

श्रीरामराज्यकी महिमा ( श्रीअर्जुनलालजी बंसल ) करा दिया। उन्हींके साथ श्रीजानकीजीको देखकर चौदह वर्षका वनवासकाल पूराकर, लंकामें आसुरी

शक्तियोंका विनाशकर भगवान् श्रीराम जनकनंदिनी

लौट आये। इतने लम्बे अन्तरालके पश्चात् जैसे ही प्रभुने

अपनी जन्मभूमिपर पदार्पण किया, नगरके मुख्य प्रवेश-

द्वारपर उपस्थित भाई भरत और शत्रुघ्नके साथ उनकी

समस्त प्रजाने उनका भरपूर स्वागत किया। प्रभुके दर्शन

कृपासिंधु जब मंदिर गए। पुर नर नारि सुखी सब भए॥ गुर बसिष्ट द्विज लिए बुलाई। आजु सुघरी सुदिन समुदाई॥

प्रजा प्रसन्ततासे झुमने लगी। इधर गुरु वसिष्ठने राज्यके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बुलाकर कहा—'आज शुभ घड़ी है,

सब द्विज देह हरिष अनुसासन। रामचंद्र बैठहिं सिंघासन॥

हे श्रेष्ठ द्विजजनो, आप सब विचारकर श्रीरामको

उधर श्रीरामजीने भवनमें पहुँच माताओंका आशीर्वाद

प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिब्य सिंघासन मागा॥

रिब सम तेज सो बरिन न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई॥

शुभ दिन है और सारे योग भी शुभ हैं, अत:

महाराजका तिलक शीघ्र करें।'

प्राप्त किया, इस अवसरपर—

जनकसृता

अपने दोनों भाइयोंको साथ लेकर सारी प्रजासे

श्रीरामजीको अपने परिजनोंके साथ जाते देख सारी

पाकर समस्त अयोध्यावासी हर्षित हो उठे।

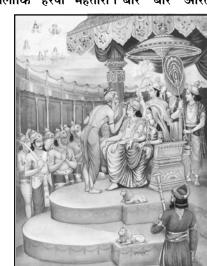
मिलते हुए प्रभु अपने भवनकी ओर चल पड़े।

श्रीजानकीजी तथा भाई लक्ष्मणके साथ सकुशल अयोध्या

उपस्थित ऋषि-मुनि हर्षित हो उठे। उल्लासके इन

क्षणोंमें ब्राह्मणोंने वेद-मन्त्रोंका उच्चारण किया। आकाशमें उपस्थित समस्त देव प्रभुकी जय-जयकार करने लगे। इस शुभ अवसरपर,

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा॥ स्त बिलोकि हरषीं महतारी। बार बार आरती उतारी॥



श्रीवसिष्ठ मुनिने सर्वप्रथम तिलक किया, तत्पश्चात्

राजगद्दी सौंपनेकी अनुमति दें।' गुरुजीके इस प्रस्तावसे हर्षित होकर सभी ब्राह्मणोंने एक स्वरमें कहा, 'हे ऋषिवर, प्रभु श्रीरामजीका राज्याभिषेक केवल अयोध्याके

अपने पुत्रको राजसिंहासनपर विराजमान देख माताओंने हर्षित होकर आरती उतारी। बैठें त्रैलोका। हरिषत भए गए सब सोका॥

उपस्थित श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने भी तिलककर आशीर्वाद दिया।

लिये नहीं, अपितु सम्पूर्ण सृष्टिके लिए आनन्ददायक होगा। अब इस निर्णयपर किसी प्रकारका सोच-विचार अथवा विलम्ब करनेका कोई कारण नहीं है। आप हमारे

बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।

चलिहं सदा पाविहं सुखिह निहं भय सोक न रोग॥

श्रीरामजीका राज्याभिषेक होते देख तीनों लोकोंमें हर्ष व्याप्त हो गया। तुरंत ही सारे कष्ट समाप्त हो गये,

शत्रुभावका कोई चिह्न नहीं रहा, सर्वत्र प्रेमकी अमृत-वर्षा होने लगी। सारी प्रजा अपने धर्म और वर्णाश्रमके

समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई॥ अनुकूल आचरण करने लगी। समस्त प्रजाजन रोग और बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयित पुकारे॥ शोकसे मुक्त हो गये।

मुनि वसिष्ठने एक दिव्य सिंहासन, जिसका तेज स्रिक्ति समानि था, मिर्गविकर औरामजीकी इसंपर विरागितिक समानि । MADE WITH LOVE BY Avinash Shi

संख्या ८ ] श्रीरामराज्	यकी महिमा २७
<u> </u>	***********************************
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलिहं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥	चरणोंमें श्रद्धावान् हैं, सारे पुरुष एक पत्नीव्रती और
चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥	समस्त नारियाँ पतिव्रत धर्मका पालन करनेवाली हैं।
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥	फूलिहं फरिहं सदा तरु कानन। रहिहं एक सँग गज पंचानन॥
भगवान् श्रीरामजीके राज्यमें सारी प्रजा दैहिक,	खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥
दैविक और भौतिक कष्टोंसे भी मुक्त हो गयी। सारे	कूजिंहं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरिंहं बन करिंह अनंदा॥
जीवोंमें प्रेमरसका संचार होने लगा। समस्त प्रजाजन	सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा॥
वेद-नीतिके अनुसार मर्यादित जीवन-यापन करते हुए	उद्यानोंमें वृक्ष सदा पुष्पोंसे आच्छादित तथा हरियालीसे
धर्मका पालन करने लगे।	ओत-प्रोत रहते हैं। गजराज और सिंह एक साथ रहते
धर्म, सत्य, शौच, दया और दान अपने चार चरणोंसे	हैं। वनक्षेत्रमें पशु और पक्षी प्रेमपूर्वक विचरण करते हैं।
फल-फूल रहा है। पापका स्वप्नतकमें कोई स्थान नहीं	चहचहाते हुए पक्षी निर्भय होकर वृक्षोंकी डालपर
है। सारी प्रजा सदा-सर्वदा श्रीरामजीके गुणगानमें लीन	अठखेलियाँ करते हैं। शीतल मन्द सुगन्धित वायु सदा-
रहनेके कारण मोक्षकी अधिकारिणी बन गयी।	सर्वदा चारों दिशाओंमें बहती रहती है। पुष्पोंका रस
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥	चूसकर भ्रमर गुंजार करते खुशियाँ मनाते हैं।
निहं दिरद्र कोउ दुखी न दीना। निहं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥	लता बिटप मागें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥	सिस संपन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य निहं कपट सयानी॥	प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी॥
बाल्यकाल अथवा युवावस्थामें न तो किसी प्रकारकी	सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी॥
पीड़ा होती है और न ही किसी की मृत्यु होती है। सबके शरीर	श्रीरामजीके राज्यमें बेलें और वृक्ष इच्छामात्रसे ही
सुन्दर और स्वस्थ होते हैं। दिरद्रताका राज्यकी सीमामें प्रवेश	मधु टपका देते हैं। गौएँ भरपूर मात्रामें दूध देती हैं।
वर्जित हो गया। श्रीरामजीके राज्यमें न कोई दुखी है और	धरतीमाता सदा हरियालीसे ओत-प्रोत रहती हैं। त्रेता
न ही कोई मूर्ख ही है। सारी प्रजा शुभ लक्षणोंसे युक्त है।	युगमें सत्ययुगका आभास होने लगा है। पर्वतोंपर विविध
कोई भी प्रजाजन अहंकारी नहीं है, सारे धार्मिक	प्रकारकी मणियोंकी खानें प्रकट हो गयीं, सारे सरोवरों
वृत्तिके पुण्यात्मा हैं। समस्त नर-नारी चतुर और गुणोंसे	और नदियोंमें निर्मल जल प्रवाहित होने लगा।
भरपूर हैं, सभी विद्वान् और भरपूर ज्ञानके भण्डार हैं।	सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं॥
अन्योंके द्वारा किये गये उपकारोंके प्रति कृतज्ञताका भाव	सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥
रखते हैं, कपट नाममात्रको भी जानते नहीं।	बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।	मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज॥
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं॥	समुद्र अपनी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करते। वे अपनी
काकभुशुण्डिजी गरुड़जीसे कहते हैं, हे पक्षिराज!	लहरोंकी झोलीमें रत्न भरकर तटपर फैला देते हैं, जिन्हें
प्रभु श्रीरामजीके राज्यमें जड़-चेतन किसीको भी सम्पूर्ण	मनुष्य एकत्रित कर लेते हैं। सारे सरोवर रंग-बिरंगे कमल
संसारमें काल, कर्म और स्वभावसे उत्पन्न दुख प्रभावित	पुष्पोंसे सुशोभित रहते हैं। दसों दिशाओंमें प्रसन्नता छायी
नहीं करते।	है। सूर्य आवश्यकतानुसार ताप प्रदान करते हैं। चन्द्रमा
सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी॥	अपनी किरणोंसे सम्पूर्ण भूमंडलको शीतलता प्रदान करते
एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥	हैं, मेघमालाएँ आवश्यकतानुसार वर्षा करती हैं।
सारे नर-नारी उदार प्रवृत्तिके हैं, सभी ब्राह्मणोंके	ऐसी है, श्रीरामजीके राज्यकी महिमा!

मानस रोग ( श्रीगोपालदत्तजी सारस्वत ) आधुनिक युगने जहाँ एक ओर सुख-भोगकी मानव-समाज आज आर्तनाद कर रहा है। इनमेंसे एक-सामग्री प्रचुरतासे उत्पन्न की है, वहीं दूसरी ओर विविध एक रोग ही जीवनका नाश करनेमें समर्थ है, जिसमें प्रकारके रोगोंकी भी सृष्टि की है। भोग और विलासके अनेक रोग हैं, उसके विषयमें तो कहना ही क्या? पदार्थोंकी वृद्धिके साथ-साथ मानसिक रोग भी बढ़ते जा पाश्चात्य देशोंमें मानस-शास्त्रियोंने मनके रोगोंका रहे हैं। आज सम्पूर्ण सुख-सुविधाओंके बीच मानव बहुत-कुछ अध्ययन किया है। वहाँ मानसिक रोगोंके

दुखी, व्यग्र एवं अशान्त है। ज्यों-ज्यों विज्ञानजनित भौतिक-संस्कृतिने उन्नति की है, त्यों-त्यों मनुष्य भौतिक सुखोंकी ओर अधिकाधिक आकर्षित हुआ है। जिसके पास भौतिक सम्पत्तिका भण्डार जितना ही विशाल है, वह आजकल उतना ही

सभ्य और श्रेष्ठ माना जाता है। आधुनिक सभ्यताने वर्गवादको जन्म दिया है। आजका समाज वर्ग-भेद, जाति-भेद, भाषा-भेद, रंग-भेद, वर्ण-भेद, देश-भेद, नीति-भेदके कारण नाना

भेदोंमें विभाजित हो गया है। इस भेदवादने बुद्धिको संकुचित बनाकर व्यक्तित्वको खण्डित कर डाला है। प्रत्येक व्यक्तिमें स्वरतिकी भावना (Ego instinct) चरम सीमाको पहुँच गयी है। वह जो कुछ कार्य करता है,

अपने क्षुद्र अहंके परितोषके लिये। इस अहंवादकी प्रवृत्तिने मानव-जीवनमें अनेक ग्रन्थियाँ डाल दी हैं, जिससे आजके मानवका चरित्र कुण्ठाग्रस्त हो गया है। उसके मानसमें अतृप्त इच्छाओंका ताण्डव नृत्य होता रहता है। आजके मानवका हृदय कुण्ठा, भय, द्वन्द्व, अतृप्ति, आतुरता, उद्वेग, विक्षोभ, नैराश्य आदि अनेक विकारोंका संग्रहालय बना हुआ है। सभ्यताके अभिमानी पाश्चात्य देशोंमें भी नागरिक जीवन अनौचित्य, अपराध, औद्धत्य आदि नाना विकृतियोंसे कलुषित हो रहा है। फलत: उन देशोंमें पागलोंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। यों तो मानसिक रोग अनेक हैं, जिनकी गणना

करना कठिन है; किंतु काम, क्रोध, मोह, मद, शोक,

भय, चिन्ता, हिंसा, द्वेष, दम्भ, द्रोह, निन्दा, आलस्य,

प्रमाद, संशय, दीनता, कायरता, मत्सरता आदि विशेषरूपसे

दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इन रोगोंसे सर्वत्र पीड़ित होकर

चिकित्सालय भी मिलते है, जिनमें उचित प्रकारसे रोगोंका निदान होता है; किंतु हमारे देशमें मानसिक रोगोंके उपचारकी वैसी सुविधा नहीं है। भगवद्गीताके चौदहवें अध्यायमें गुणोंकी उत्पत्ति,

स्वरूप, स्वभाव, कार्य, परिणाम एवं इनसे छूटनेके उपायोंपर विचार किया गया है और अन्तमें ज्ञानके मार्गसे सिद्धि प्राप्त करनेवाले त्रिगुणातीत पुरुषके लक्षणोंका वर्णन है। इसी संदर्भमें कहा गया है-सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।

प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव अर्थात् सत्त्वगुणसे ज्ञान, रजोगुणसे लोभ तथा तमोगुणसे प्रमाद, मोह एवं अज्ञानकी उत्पत्ति होती है। इसमें सत्त्वगुणको छोड़कर शेष गुणों (रजोगुण

इनमें भी तमोगुणजन्य प्रमाद, मोह और अज्ञान सबसे अधिक भयानक रोग हैं; क्योंकि सम्पूर्ण मानसिक रोगोंका मूल एकमात्र अज्ञान ही है। इसी प्रकार स्थितप्रज्ञके लक्षणोंके प्रसंगमें गीतामें कहा गया है—

और तमोगुण)-को सब दोषोंका कारण कहा गया है।

िभाग ९२

(गीता १४।१७)

सङ्गात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥ क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः। स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।

(गीता २।६२-६३) विषयभोगोंका चिन्तन करनेसे उनमें आसक्ति हो जाती है और आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न

होती है और कामनामें बाधा पडनेपर क्रोध उत्पन्न होता

संख्या ८] मानस	र रोग २९
*********************************	**************************************
है। क्रोधसे अज्ञान उत्पन्न होता है, अज्ञानसे स्मरणशक्ति	होकर पतनके गड्ढेमें जा गिरते हैं।
भ्रमित हो जाती है, स्मृतिके भ्रमित होनेसे बुद्धिका नाश	नवीन मनोविज्ञानकी खोजोंसे ज्ञात हुआ है कि
हो जाता है तथा बुद्धिके नाशसे पुरुष कल्याणसे पतित	मानसिक रोगोंके फलस्वरूप शारीरिक व्याधियोंका आरम्भ
हो जाता है।	होता है। रुग्ण शरीर रुग्ण मनोवृत्तिका परिणाम है।
यहाँ विषयासक्तिजनित विषयकामनाको सम्पूर्ण	विषय-कामना, मानसिक आवेग, स्नायविक तनाव एवं
व्याधियोंका मूल कारण माना गया है। सब पापोंका मूल	प्रतिहिंसाकी भावनाने नाना प्रकारके शारीरिक रोगोंको
काम है। इस तथ्यको गीतामें अन्यत्र भी प्रकट किया	उत्पन्न किया है। इसमें संदेह नहीं; भय, चिन्ता, शोक
गया है—	आदि मनोविकृतियोंके कारण अनेक बाह्य रोगोंका जन्म
काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।	होने लगता है।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥	बौद्ध धर्मने आन्तरिक दोषोंकी निवृत्तिके लिये
(गीता ३।३७)	अष्टाङ्गिक मार्गका प्रतिपादन किया है। सम्यक् दृष्टि,
अर्थात् रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही ( प्रतिहत	सम्यक् संकल्प एवं सम्यक् कर्मान्त आदिके द्वारा ही
होकर) क्रोध हो जाता है। यह काम भोगोंसे कभी नहीं	जीवनका सुधार हो सकता है। कुशल कर्मोंके आचरणसे
तृप्त होता। यह बड़ा पापी है। इसे ही शत्रु समझो।	अकुशल कर्मोंका निवारण ही सम्यक् दृष्टि है। बौद्ध
योगदर्शनमें—' <b>अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः</b>	धर्मने चित्तके संस्कारके लिये शुभ कर्मोके आचरणका
क्लेशाः ।'	अनुमोदन किया है।
अविद्या, अहंकार, राग-द्वेष एवं मृत्युभयके नामसे	योगदर्शनने भावनाकी शुद्धिपर बल दिया है—
जिन पाँच क्लेशोंका उल्लेख हुआ है, वे महारोग हैं।	'मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्य-
इनमें मूल कारण अविद्याको बतलाया गया है।	विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।'
गोस्वामी तुलसीदासजीने उत्तरकाण्डान्तर्गत मानस	(योगदर्शन १।३३)
रोगोंके प्रकरणमें कहा है—	अर्थात् सुखी मनुष्योंमें मित्रताकी भावना करनेसे,
'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्हते पुनि	दुखी लोगोंपर दया करनेसे, पुण्यात्माओंको देखकर
उपजिहं बहु सूला॥'	प्रसन्न होनेसे और पापियोंकी उपेक्षा करनेसे मलोंका
सम्पूर्ण रोगोंका मूल मोह है। उन व्याधियोंसे फिर	नाश होकर चित्त शुद्ध हो जाता है।
और बहुत-से-कष्ट उत्पन्न होते हैं।	चित्तके विकारोंको दूर करनेके लिये योगदर्शनकारने
तात्पर्य यह है कि सभी प्रकारके मानसिक रोगोंका	एक और भी उपाय बताया है—
मूल कारण अविद्या, मोह और मोहजनित विषय-कामना	'वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्।'
बताया गया है।	(योगदर्शन २।३३)
शारीरिक रोगोंकी अपेक्षा मानसिक रोग अधिक	इसका अर्थ यह है कि विरोधी भावोंके बाधा
भयानक हैं। सूक्ष्म एवं अदृष्ट होनेके कारण उनसे	डालनेपर उनके प्रतिपक्षी विचारोंका बार-बार चिन्तन
आसानीसे छुटकारा नहीं मिलता। एक तो उनकी	करना चाहिये।
पहचान ही कठिन है। दूसरे यदि उनका ज्ञान भी हो	अशुभ विचारोंको मनसे हटानेके लिये बार-बार
जाय तो उनके दूर करनेका उपाय विदित नहीं है। इसके	शुभ विचारोंका चिन्तन करना चाहिये। निषिद्ध कार्योंके
लिये वैद्य भी नहीं मिलते। फलतः उनके वशीभूत होकर	पूर्वापर परिणामको सोचकर उनसे विरत हो जाना
प्राणी विविध कष्टोंको भोगते हैं। अन्तमें कर्तव्यसे भ्रष्ट	चाहिये। उदाहरणके लिये—झूठ, चोरी अथवा व्यभिचारके

विचार आनेपर उनसे उत्पन्न होनेवाले क्षणिक सुख और रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी।।

िभाग ९२

भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले स्थायी दु:ख तथा अपयशका एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं।।

बार-बार विचार करना चाहिये। इसके अतिरिक्त झुठके (रा०च०मा० ७।१२२।५—८)

स्थानपर सत्य, कार्पण्यके स्थानपर दान और व्यभिचारके निष्कर्ष यह कि आन्तरिक रोगोंकी निवृत्तिके लिये

स्थानपर पवित्र मंगलमय भावोंका अनुसरण करते रहना अनेक उपायोंका विधान किया गया है। इनमेंसे जिसके

चाहिये। इस प्रकार अशुद्ध संकल्पोंका उदय होनेपर लिये जो अनुकूल हो, उसे उसी उपायका निरन्तर

उनके प्रति बार-बार दोष-दुष्टिसे विचार करके शुभ अवलम्बन करते रहना चाहिये, परंतु इसके लिये सबसे अधिक आवश्यक है—सत्संकल्प। ज्यों-ज्यों शुभ संकल्पकी संकल्पोंके द्वारा उनका निवारण करना चाहिये।

गो० तुलसीदासजीने मानसिक रोगोंका वर्णन करके शक्तिका विकास होगा, आन्तरिक रोग आप-से-आप उनके नाशके लिये भक्तिको संजीवन मूल बताया है— नष्ट होने लगेंगे। संकल्पकी शक्तिके दृढ, बलिष्ठ तथा राम कृपाँ नासिहं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संजोगा॥ अमोघ होनेसे समस्त मनोविकृतियाँ अवश्य दूर होंगी

तथा चित्त शिवसंकल्प हो जायगा। इति शम्। सद्गुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा॥ श्रीरामचरितमानसमें वर्णित मानस रोग

## मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा॥

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजिहं बहु सूला॥ कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥ तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना॥ **इरषार्ड** । हरष बिषाद पर सुख देखि जरिन सोइ छई। कुष्ट दुष्टता अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ॥

अति भारी । त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी॥ उदरबुद्धि जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका। कहँ लिंग कहौं कुरोग अनेका॥

[काकभुशुण्डि गरुड्जीसे कहते हैं—]'हे तात! अब मानस-रोग सुनिये, जिनसे सब लोग दु:ख पाया करते

हैं। सब रोगोंकी जड़ मोह (अज्ञान) है। उन व्याधियोंसे फिर और बहुत-से शूल उत्पन्न होते हैं। काम वात

है, लोभ अपार (बढ़ा हुआ) कफ है और क्रोध पित्त है, जो सदा छाती जलाता रहता है। यदि कहीं ये तीनों

भाई (वात, पित्त और कफ) प्रीति कर लें (मिल जायँ) तो दु:खदायक सन्निपात रोग उत्पन्न होता है। कठिनतासे

प्राप्त (पूर्ण) होनेवाले जो विषयोंके मनोरथ हैं, वे ही सब शूल (कष्टदायक रोग) हैं; उनके नाम कौन जानता

है (अर्थात् वे अपार हैं)। ममता दाद है, ईर्ष्या (डाह) खुजली है, हर्ष-विषाद गलेके रोगोंकी अधिकता है (गलगंड, कण्ठमाला या घेघा आदि रोग हैं), पराये सुखको देखकर जो जलन होती है, वही क्षयी है। दुष्टता

और मनकी कुटिलता ही कोढ़ है। अहंकार अत्यन्त दु:ख देनेवाला डमरू (गाँठका) रोग है। दम्भ, कपट, मद और मान नहरुआ (नसोंका) रोग है। तृष्णा बड़ा भारी उदरवृद्धि (जलोदर) रोग है। तीन प्रकार (पुत्र,

धन और मान)-की प्रबल इच्छाएँ प्रबल तिजारी हैं। मत्सर और अविवेक दो प्रकारके ज्वर हैं। इस प्रकार अनेकों

बुरे रोग हैं, जिन्हें कहाँतक कहूँ।[श्रीरामचरितमानम्, उत्तरकाण्ड] Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

संख्या ८] अहंकार : विनाशका बीज अहंकार : विनाशका बीज (डॉ० गो० दा० फेगडे) मानव प्राणीको जन्मसे ही कुछ दोष लगे रहते हैं, लदे हुए पेड़की तरह हमेशा नम्रतासे झुके हुए होते हैं। उनमें अहंकार (अहं)-का दोष सर्वप्रमुख है। उसीके महान् विद्वान् आदि शंकराचार्यको कौन नहीं जानता? एक बार वे समुद्रके किनारेपर अपने एक शिष्यके साथ कारण जीवमें अनेक दोष निर्मित होते हैं। अहंकार, अभिमान और गर्व ये शब्द लगभग एक ही अर्थके प्रतिपादक हैं। बैठे हुए थे। उनके शिष्यने उनसे कहा, 'भगवन्! आपका अहंकारीको दूसरोंकी तुलनामें खुदको ऊँचा समझनेकी ज्ञान इस सागरकी तरह अथाह है।' उन्होंने तुरंत अपनी भावना होती है। अहंकार व्यक्तिकी अहं भावनाका विकृत छड़ी सागरके जलमें डुबोकर निकाली और कहा—'मेरा आविष्कार है, अभिमान या गर्व अपने साथ-साथ अपनोंपर ज्ञान इस छड़ीपर लगे हुए पानी जितना भी नहीं है।' श्रीमान शंकराचार्यका यह हाल है तो आजके तथाकथित भी होता है। सामान्यत: धन, यौवन, सुन्दरता, विद्वत्ता, सत्ता आदिका अहंकार हो जाता है, वास्तवमें किसी भी विद्वानोंका ज्ञान कितना होगा? संस्कृतमें कहा जाता है, बातका अहंकार या अभिमान व्यर्थ होता है: क्योंकि ये **'विद्या विनयेन शोभते'** अर्थात् विद्या (ज्ञान) विनम्रतासे सब चीजें क्षणभंगुर होती हैं, जो आज हैं और कल नष्ट सुशोभित होती है, अहंकारसे नहीं। होनी हैं। जब मनुष्यका शरीर और जीवन ही नाशवान् है अभिमान अज्ञानकी अवस्थामें ही होता है, जब तो और चीजोंका कहना ही क्या? दूसरी बात, संसारमें मनुष्यको सत्यका ज्ञान हो जाता है, तब उसका सब एकसे बढ़कर एक व्यक्ति होते हैं 'बहुरत्ना वसुन्धरा' अभिमान मिट जाता है। फिर भी मनुष्य अभिमान क्यों करता है ? इसका कारण अभिमानका अन्त हमेशा बुरा होता है। एक कागजका

मनुष्यका अज्ञान है। उसकी सोच कुएँमें रहनेवाले मेंढककी तरह होती है। पृथ्वीपर यूनान एक छोटा-सा देश है, उसका एक शहर एथेन्स है। उस एथेन्समें सुकरात नामका तत्त्ववेत्ता रहता था। उसके एक मित्रका एथेन्स शहरमें एक भव्य और सुन्दर महल था, उसको अपने महलपर बहुत गर्व

चीजोंका अभिमान हो जाता है।

है—'थोथा चना बाजे घना' आधे-अधूरे लोग ही

अहंकारके कारण हवामें चलते हैं, महात्मा तो फलोंसे

टुकड़ा पवनके सहारेसे उड़ता हुआ पहाड़की चोटीपर पहुँच गया, वह अभिमानपूर्वक शिखरसे बोला, 'देखो, मैं तुझसे कितना ऊँचा हूँ!' इतनेमें एक हवाका झोंका आया और वह पुन: जमीनपर आ गया। एक विद्वान् गृहस्थ एक बार नावमें बैठकर नदी पार कर रहे थे, उन्हें अपनी विद्वत्तापर बहुत गर्व था। उन्होंने था। एक दिन सुकरातने उसको पृथ्वीका नक्शा लानेको नाविकसे पूछा, 'तूने भगवद्गीता पढ़ी है क्या?' नाविक कहा और पूछा, 'बताओ इसमें यूनान देश कहाँ है ? अब बोला 'ना', फिर उसने पूछा, 'तू रामायण-महाभारत तो बताओ एथेन्स कहाँ है ? अब इसमें अपना महल दिखाओ।' जानता ही होगा ?' नाविक बोला, 'ना'। तब उस विद्वान्ने सुकरातके मित्रने कहा-पृथ्वीके नक्शेपर यूनान एक छोटे-गर्वसे कहा, 'तो फिर तेरा आधा जीवन तो बर्बाद हो गया।' से बिन्दुकी तरह है और फिर उसमें महल कहाँ दिखेगा? इतनेमें तूफान आया, नाविक बोला, 'महाशय, आपको तैरना तो आता ही होगा?' विद्वान् बोला, 'नहीं'। तब सुकरातके दोस्तकी ही तरह हमें भी अपनी छोटी-छोटी नाविक बोला, 'तो फिर आपका सारा जीवन बर्बाद हो गया।' मनुष्यकी महानता उसके नम्र और विनयशील प्राचीन समयकी कथा है, महिकावती नामक नगरीमें स्वभावसे आँकी जाती है। अपने पूर्व राष्ट्रपति डॉ॰ ए॰पी॰जे॰ कार्तिक नामका राजा था। एक बार उसका रावणके साथ युद्ध हुआ। युद्धमें रावणने उसके दोनों हाथ तोड़ डाले, वह अब्दुल कलाम उसका जीता-जागता उदाहरण हैं। कहावत

टूटी बाँहोंसे परेशान होकर भटकते-भटकते सह्याद्रिपर्वतपर

आ गया। वहाँ भगवान् श्रीदत्तात्रेय प्रभुजी स्नानके उपरान्त

धूपमें बैठकर अपनी जटाओंको सुखा रहे थे। राजा कार्तिक मनुष्यमें अहंकार जन्मजात होता है, वह तमोगुणका अपनी ट्टी बाँहोंपर अंगारे रखकर उनके पीछे जाकर कार्य है। सांसारिक जीवनमें प्रत्येक व्यक्ति कम-ज्यादा

भाग ९२

अहंकारमें डूबा होता है। भगवान् श्रीकृष्णने गीताके सोलहवें अध्यायमें अहंकारको 'आसुरी सम्पत्ति' कहा

मुड़कर देखा तो उन्होंने तुरंत उसे अंगारे फेंक देनेके लिये है, आसुरी सम्पदाके लोग क्रोधी और अहंकारी होते हैं। कहा तथा उसको वरदान दिया कि 'उसको एक हजार पुराणोंमें वर्णित अधिकांश राक्षस अहंकारी होते थे। भुजाएँ प्राप्त होंगी: वह चक्रवर्ती राजा बनेगा 'तथा उसको अहंकार ही उनके नाशका कारण होता था। इसका सर्वप्रमुख उदाहरण रावण है। रावणके पास क्या नहीं

वाकुसिद्धि भी प्रदान की। साथ ही श्रीदत्तात्रेय प्रभुजीने उसे

उनको ऊष्मा पहुँचाने लगा, अंगारोंके कारण उसकी टूटी

बाहोंकी चमड़ी जलने लगी, जब श्रीदत्तात्रेय प्रभुजीने

चेतावनी भी दी कि 'गाय, स्त्री और ब्राह्मणका अपमान था? उसके पास विद्वत्ता, सत्ता, साम्राज्य, शौर्य, धन-जीवनमें कदापि न करना ' इस प्रकार कार्तिक राजा चक्रवर्ती वैभव, पतिव्रता पत्नी, शूर एवं आज्ञाकारी पुत्र सब कुछ

राजा बना। वह सहस्रार्जुन नामसे जाना जाने लगा और था। फिर भी अहंकारके कारण उसका नाश हुआ। कालान्तर उसने रावणको परास्त किया। इतने सारे वरदान महाभारतमें दुर्योधनका नाश भी अहंकारसे ही हुआ था।

मिलनेके बाद उसे अपनी शक्तिका गर्व हो गया। वह अभिमानी हो गया, अभिमानके कारण वह चेतावनी भूल

गया। उसने गाय (कामधेनु), स्त्री (रेणुका) और ब्राह्मण

(जमदग्नि) इन तीनोंका अपमान किया। परिणामवश श्रीदत्तात्रेय प्रभूजीने उसको दिया हुआ वर वापस ले लिया और श्रीपरशुरामजीके हाथों सहस्रार्जुन मारा गया। इस

वह अन्तमें दु:ख और अशान्तिका कारण बनता है, प्रकार सहस्रार्जुनमें अभिमान जाग्रत् होनेके कारण उसका

सत्यानाश हो गया।

उसे भीष्म, द्रोण, गान्धारी, विदुर, व्यासजी आदि सभी

हितैषियोंने समझाया, परंतु अहंकारके कारण उसने किसीकी बात न मानी, फलत: कुलसहित नष्ट हो गया। वस्तुत: अहंकार मनुष्यका विवेक नष्ट कर देता है।

अहंकार कलह, क्रोध और अधोगतिका बीज होता है।

नम्रता शत्रुताका नाश करती है, लेकिन अहंकार खुदका नाश करता है और शत्रुताका निर्माण करता है।

- संयमका प्रथम सोपान—वाक्संयम प्रेरक-प्रसंग

जब महाभारतका अन्तिम श्लोक महर्षि वेदव्यासके मुखारविन्दसे निःसृत हो गणेशजीके सुडौल-सुपाठ्य

अक्षरोंमें भूर्जपत्रपर अंकित हो चुका, तब गणेशजीसे महर्षि व्यासने कहा, 'विघ्नेश्वर! धन्य है आपकी लेखनी। महाभारतका सृजन तो वस्तुतः उसीने किया है। पर एक वस्तु आपकी लेखनीसे भी अधिक विस्मयकारी

है, वह है आपका मौन। सुदीर्घ कालतक आपका-हमारा साथ रहा। इस अवधिमें मैंने तो पन्द्रह-बीस लाख शब्द बोल डाले, परंतु आपके मुखसे मैंने एक भी शब्द नहीं सुना।'

इसपर गणेशजीने मौनकी व्याख्या करते हुए कहा, 'बादरायण, किसी दीपकमें अधिक तेल होता है, किसीमें कम, परंतु तेलका अक्षय भण्डार किसी दीपकमें नहीं होता। उसी प्रकार देव, मानव, दानव सभी देहधारियोंकी प्राणशक्ति सीमित है, परंतु असीम किसीकी नहीं। इस प्राणशक्तिका पूर्णतम लाभ वही पा सकता है, जो संयमसे

उसका उपयोग करता है। संयम ही समस्त सिद्धियोंका आधार है और संयमका प्रथम सोपान है—वाकु-संयम।

जो वाणीका संयम नहीं रखता, उसकी जिह्वा बोलती रहती है। बहुत बोलनेवाली जिह्वा अनावश्यक बोलती है, और अनावश्यक शब्द प्राय: विग्रह और वैमनस्य पैदा करते हैं, जो हमारी प्राण-शक्तिको सोख डालते हैं। वाक्-संयमसे यह समस्त अनर्थ-परम्परा दग्धबीज हो जाती है। इसीलिये मैं मौनका उपासक हूँ। [प्रेषक-श्रीअरुणजी गुप्ता]

संख्या ८ ] महात्मा पूनतानम् संत-चरित-महात्मा पूनतानम् (श्रीरामलाल) महात्मा पुनतानम् भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्त भाषामें अपने आराध्य गुरुवायूर-मन्दिरमें प्रतिष्ठित भगवान् और उच्चकोटिके रसिक संत थे। वे परम भागवत थे। व्रजनारायण श्रीकृष्णका यश गाया। उनकी रचना सरल उन्होंने अपनी श्रीकृष्ण-उपासनासे केरल प्रदेश ही नहीं, और सहज-सुगम है। उन्होंने केरल प्रदेशमें श्रीकृष्णकी रसमयी भक्ति प्रवाहित की। समस्त भारतवर्षको गौरवान्वितकर मलयालम् भाषा और साहित्यको भगवद्भक्तिसे सम्प्लावित कर दिया। केरल सत्रहवीं शताब्दीमें केरल प्रदेशके गुरुवायूर नगरने प्रदेशके सत्रहवीं शतीके प्रसिद्ध संत, 'नारायणीयम्' संत-साहित्य, भागवत-धर्म और भगवद्भक्तिके विकासमें भक्तिकाव्यके रचयिता मेपुत्तर भट्टनारायण, महान् तपस्वी अमित योगदान दिया। इसका नाम पहले कुरुवायूर था। कुरुवायूरने केरल प्रदेशके जन-जीवनमें आध्यात्मिक बिल्वमंगल और परम भगवद्धक्त राजकुमार मानवेद उनके समकालीन थे। गुरुवायूरके इष्टदेव भगवान् जागृति—क्रान्तिका भगवद्भिक्तिका सृजन किया। इस नारायणके भक्तरूपमें चारों संत अत्यन्त प्रसिद्ध थे। क्रान्तिक गर्भमें साहित्यिक और दार्शनिक जागरणका भी विशेष बात यह है कि विशिष्ट संतके रूपमें महात्मा समावेश सुलभ था। प्रत्येक वर्ष गुरुवायूरके संतोंके पूनतानम् केरलके लोकमानसमें इन तीनोंसे कहीं अधिक संविधानमें केरलकी जनता तीर्थयात्रीकी तरह उपस्थित प्रतिष्ठित तथा प्रख्यात थे। मेपुत्तर भट्टनारायण उच्चकोटिके होकर अध्यात्मका उपदेशामृत प्राप्तकर अपना जीवन विद्वान् थे। उन्होंने श्रीमद्भागवतके संक्षिप्तरूपमें १०० कृतार्थ और सफल करती थी—सत्रहवीं शतीके गुरुवायूरकी दशकों और १०३६ श्लोकोंमें विद्वत्तापूर्ण ढंगसे 'नारायणीयम्' यह आध्यात्मिक विशिष्टता है। मेपुत्तर भट्ट नारायण, काव्यकी रचना की। महात्मा बिल्वमंगलके जीवन-मानवेद, स्वामी बिल्वमंगल और महात्मा पूनतानम्की वृत्तान्तके सम्बन्धमें सामग्रीका अभाव है। वे प्रेरणासे गुरुवायूरके मन्दिरका वातावरण नारायण-नारायणके परम पवित्र उच्चारणसे निरन्तर परिपूर्ण रहता आया है 'कृष्णकर्णामृत'के रचयिता बिल्वमंगलके नाम-रूपसे प्रसिद्ध लीलाशुकसे भिन्न व्यक्ति थे। लीलाशुक तो और चिरकालतक भगवद्विग्रहके दर्शनार्थी और तीर्थयात्री चैतन्य महाप्रभुके पूर्ववर्ती थे। पूनतानम्के समकालीन श्रीनारायण-नारायणके उच्चारणसे अपने-आपको कृतार्थ महात्मा बिल्वमंगल सत्रहवीं शतीमें विद्यमान थे। उनकी करते रहेंगे। कृपासे राजकुमार मानवेदको भगवान् श्रीकृष्णका बालरूपमें केरल प्रदेशके पवित्र भूमिभागमें एक मध्यम दर्शन हुआ था। जब मानवेदने भगवान्का आलिंगन श्रेणीके ब्राह्मणकुलमें महात्मा पुनतानम्ने सन् १५४७ करना चाहा, तब उन्होंने कहा कि 'बिल्वमंगल स्वामीने ई॰में जन्म लिया था। उनके पिताका नाम नीलकण्ठ मुझसे आलिंगनकी बात नहीं कही है।' जब उसने बताया जाता है। उन्हें मलयालम् भाषाका बोध तो था, उनको बलात् आलिंगनमें भरना चाहा, तब वे एक पर उनका संस्कृत-अध्ययन नहीं-के बराबर था। वे मोरपंख छोड़कर अदृश्य हो गये। भट्ट नारायणने श्रीमद्भागवतका अवलोकन और पाठ करते रहते थे। अम्पलप्पुल-नरेश देवनारायणको बिल्वमंगल स्वामीका इसके फलस्वरूप उन्हें संस्कृत भाषाका भी थोड़ा-बहुत शिष्य कहा है। देवनारायण भट्ट नारायणके संरक्षक थे। ज्ञान हो गया था। उन्होंने अपने पदोंमें तथा 'कृष्णकर्णामृत के राजकुमार मानवेद व्याकरण-शास्त्रके महान् पण्डित थे। मलयालम्-भाषानुवादमें नीलकण्ठनामक गुरुका संस्तवन किया है। इन्हीं नीलकण्ठको उनका पिता बताया जाता उनको 'प्रज्ञातपातंजल' कहा जाता है। उन्होंने 'कृष्णगीति' की रचना की। महात्मा पूनतानम्की विशेषता यह है कि है। ऐसी धारणा है कि उपनयन-संस्कारके अवसरपर पिताने गुरुरूपमें उन्हें गायत्रीमन्त्र प्रदान किया था। उन्होंने सीधी-सादी सर्वसाधारणके समझनेयोग्य मलयालम्

भाग ९२ अपने ही जैसे असंख्य नि:संतान प्राणियोंको भगवान्की अतएव स्पष्ट है कि नीलकण्ठ ही उनके पिता और गुरु—दोनों थे। महात्मा पूनतानम्का वास्तविक नाम क्या शिशुलीलाके आस्वादनमें ही आत्मसंतोष प्राप्त करनेका था, इसका पता नहीं है। पूनतानम् तो उस घरका नाम उपाय बताया। महात्मा पूनतानम्का जीवन वैराग्यरससे था, जो तिरुमालंकनुके निकट वालुवनादके नेनमेनि समृद्ध हो उठा। स्थानमें स्थित था। इसी घरमें उनके ससुर (पत्नीके भगवान्की कृपाशक्ति भक्त पूनतानम्की रक्षामें पिता)-ने अपने पुत्ररूपमें जामाताको गोद लिया था। सदा तत्पर रहती थी। एक दिनकी घटना है, वे गुरुवायूर घरके नामपर ही वे पूनतानम् कहे जाने लगे। विवाहके जा रहे थे। उनपर डाकुओंने रास्तेमें आक्रमण किया। पश्चात् लम्बे समयतक पूनतानम्-दम्पतीको संतान न गुरुवायूर पहुँचकर भगवान्के श्रीविग्रहका दर्शन करनेका हुई। उन्होंने गुरुवायूरके आराध्यदेवता भगवान् नारायणसे समय बीतने लगा। पूनतानम्के लिये दर्शनका विलम्ब संतानके लिये प्रार्थना की और उनकी कृपासे पुत्रका असह्य हो उठा। उस घोर संकटमें उन्होंने करुणावरुणालय जन्म हुआ। पर वह कालकवलित हो गया। कहा जाता भगवान् श्रीनन्दनन्दनका आवाहन किया, उनसे रक्षा है कि जिस दिन उस शिशुका अन्नप्राशन-संस्कार था, करनेकी प्रार्थना की। उन्होंने आकुलताके आवेगमें उसी दिन उसका शरीरान्त हुआ। यह भी कहा जाता कहा—'हे देव! द्रौपदीकी रक्षाके लिये आप कितनी है कि माँ बच्चेको रसोईघरमें छोड़कर कुएँपर पानी लेने शीघ्रतासे आ पहुँचे थे; गजको निर्दयी ग्राहसे बचानेके गयी थी कि बच्चा ठीक चूल्हेके पास पहुँच गया और लिये आपने साक्षात् स्मरण-अवतार ले लिया, उसकी आगमें जलकर प्राणोंसे हाथ धो बैठा। पूनतानम्के पुकारमें ही प्रकट हो गये।' भक्तकी वाणी थी; भक्तने जीवनको इस दु:खद घटनाने भगवानुके सम्मुख मोड् दु:खमें उनका आवाहन किया था; भगवान्की रक्षा-दिया; संसारकी असारता और जागतिक सम्बन्धकी नश्वरता शक्ति साकार हो उठी। इतनेमें सैनिकोंकी एक टुकड़ी तथा पारिवारिक मोहके अन्धकारके स्थानपर उनके आ पहुँची, डाकू भयभीत होकर नौ-दो-ग्यारह हो गये। जीवनमें सिच्चदानन्दस्वरूप परमात्माकी रसमयी भक्ति, संत पूनतानम्ने वैष्णव धर्म अथवा भागवत धर्मका शाश्वत आत्मज्ञान और अलौकिक दिव्य प्रेमकी त्रिवेणी प्रश्रय लिया। प्रत्येक प्राणीको भगवदाश्रयका ही वरण प्रवाहित हो उठी। एक कम पढे-लिखे, सीधे-सादे करना चाहिये-इस अकाट्य सिद्धान्तको उन्होंने अपने गृहस्थ पूनतानम् महान् संतके पदपर प्रतिष्ठित हो उठे। जीवनमें पूर्णरूपसे चरितार्थ कर दिखाया। नित्य यद्यपि उन्होंने पुत्र-प्राप्तिके लिये अनेक प्रयत्न श्रीमद्भागवतके श्रद्धापूर्वक पठन-अवलोकनसे उनकी किये, भाग्यको कोसते हुए भगवान्की कृपाका दरवाजा चित्तवृत्ति भगवद्भिक्तिसे सम्पोषित हो उठी थी। उनके खटखटाया; अगणित प्रार्थनाएँ कीं, 'संतानगोपाल' मन्त्रका उपास्य व्रजेन्द्रनन्दन बालकृष्ण थे। उनकी श्रीकृष्णमें स्तोत्रपाठ किया; अपनी भाषामें 'संतानगोपाल'की ही अप्रतिम अनन्य निष्ठा थी और प्रचारसे दूर रहकर वे तरह 'कुमाराहरणम्'की रचना की; सन्देह, निराशा-एकान्त-वासमें ही संतुष्ट रहते थे। उनके जीवनकी पवित्रताकी आधारशिला उनकी एकान्त-निष्ठा थी। आशाकी घाटियोंमें भ्रमण किया; तथापि अपने प्रयत्न निष्फल देखकर उन्होंने विवेक-धैर्यका आश्रय लिया। आत्मश्लाघा और आत्मविज्ञापनको वे जीवनकी उन्नतिके उन्होंने भव-बन्धनसे मुक्ति प्राप्त की तथा आत्मज्ञानके पथमें बाधक मानते थे। प्रकाशमें '**ज्ञानप्पान'**—ज्ञानगीताकी रचना की। उन्होंने मेपुत्त्र भट्टनारायण और पूनतानम् समकालीन थे। कहा कि 'जब हमारे हृदयके रंगमंचपर भगवान् बालकृष्ण पुनतानम् कम पढे-लिखे थे, पर भट्टनारायण उच्चकोटिके नृत्य कर रहे हैं, तब हमें अपने स्वार्थकी परितृप्तिके लिये विद्वान् थे। प्रारम्भिक अवस्थामें विद्वत्ताके मदसे उन्मत्त

संतिमाङ्गाङ्गाबर्धाङ्गात्र एक प्रमाणक प्रमाणक के प्रमाणका के प्रमाणका के प्रमाणका के प्रमाणका के प्रमाणका के प

संख्या ८ ] महात्मा प	पूनतानम् ३५
<u> </u>	<u> </u>
एक समयकी बात है, संत पूनतानम्ने भट्टनारायणसे पूछा	हुआ है। बालकने दशककी रचनामें दोष निकालना
कि 'भगवान्की उपासना किस रूपमें करनी चाहिये?'	आरम्भ किया, रचनाकी आलोचना की। उसने दशकके
विद्वत्ताके मदमें चूर भट्टनारायणके मुखसे अचानक शब्द	प्रथम श्लोकमें एक, दूसरेमें दो तथा क्रमशः दसवें
निकल पड़े कि 'भैंसेके रूपमें भगवान्की उपासना करनी	श्लोकमें दस अशुद्धियाँ निकालीं। अपनी रचनाके एक
चाहिये।' संत पूनतानम्की भगवन्निष्ठा उच्च कोटिकी	अंशमें व्याकरण–सम्बन्धी इतनी भूलें देखकर भट्टनारायणका
थी। उन्होंने भट्टनारायणके वचनमें दृढ़ विश्वास प्रकट	विद्वत्तासम्बन्धी मिथ्या अहंकार गल गया। बालक
किया। उस विश्वासके परिणामस्वरूप उन्होंने प्रभुका	क्षणमात्रमें यह कहकर अदृश्य हो गया कि मुझे आपकी
मन्दिरके बाहर भैंसेके रूपमें जाते हुए दर्शन किया।	व्याकरण-सम्बन्धी विभक्तियोंसे पूनतानम्की भक्ति कहीं
गुरुवायूरकी वैष्णव भक्तमण्डली इस घटनासे आश्चर्यचिकत	अधिक प्रिय है। भट्टनारायणकी आँखें खुल गयीं।
हो उठी; इस तरह भगवान्ने भक्तकी निष्ठाकी रक्षा की।	उन्होंने महात्मा पूनतानम्की भक्तिकी मन–ही–मन सराहना
भट्टनारायणको अपने संस्कृत भाषाके पाण्डित्यपर	की। भक्तपर भगवान्की असाधारण कृपाका दर्शनकर वे
बड़ा अभिमान था। वे महात्मा पूनतानम्के संस्कृत शब्द	मुग्ध हो उठे। भट्टनारायणने महात्मा पूनतानम्के चरणदेशमें
'अमरप्रभु:' के 'मरप्रभु' के रूपमें उच्चारणकी हँसी	साष्टांग दण्डवत् किया तथा उनसे आशिष प्रदान
उड़ाया करते थे।* मन्दिरके भीतरसे आवाज आयी, 'मैं	करनेकी याचना की। भक्तिकी मर्यादा अचिन्त्य है!
केवल अमरप्रभु और मरप्रभु ही नहीं हूँ, सर्वप्रभु भी हूँ।'	केरल प्रदेशके जनजीवनको पूनतानम्ने अपनी
भट्टनारायणने महात्मा पूनतानम्की भगवद्भावनाकी	भक्तिपूर्ण रचनाओंसे प्रभावित किया। उन्होंने लोकप्रिय
बड़ी सराहना की तथा उनका अहंकार शिथिल हो गया।	मलयालम् भाषामें भगवान्का गुणानुवाद प्रस्तुत किया।
एक समय महात्मा पूनतानम्ने मेपुत्तूर भट्टनारायणको	मलयालम् भाषामें रचित उनकी प्रसिद्ध रचना 'ज्ञानप्पान'
अपनी रचना 'ज्ञानप्पान' दिखलानेकी इच्छा की।	में श्रीहरिकी लीलाओंका एक सौ पैंतीस पदोंमें वर्णन
भट्टनारायणने यह कहकर कि 'आपको व्याकरणकी	उपलब्ध है। यह बड़ा सरस ग्रन्थ है। प्रत्येक पदकी
विभक्तियोंतकका ज्ञान नहीं है', रचनापर दृष्टिपात करना	अन्तिम पंक्तिमें 'कृष्णहरि' शब्दका प्रयोग हुआ है। इस
अस्वीकार कर दिया। इस घटनासे महात्मा पूनतानम्के	रचनामें श्रीहरिकी रसमयी लीलाओंके वर्णनके साथ-
हृदयको असह्य धक्का लगा। वे समझते थे कि रचना	साथ अनेक उपदेशप्रद पद्यात्मक वाक्य भी मिलते हैं।
देखनेके बाद भट्टनारायण प्रशंसा नहीं भी करेंगे तो	श्रीकृष्ण और रुक्मिणीके प्रेम-कलहपरक अध्यायका वे
आशीर्वाद और प्रोत्साहन तो देंगे ही। भगवान् भक्तके	बड़ा मधुर पारायण करते थे। कहा जाता है कि कोट्टियूर
सम्मानकी रक्षा करते ही हैं। दूसरे ही दिन भट्टनारायण	मन्दिरके इष्टदेव भगवान् शिव और जगज्जननी पार्वतीने
अपनी 'नारायणीयम्' रचनाके एक दशककी अशुद्धियोंके	उपर्युक्त प्रेमकलहपरक अध्यायको नित्य सुनाते रहनेके
सम्बन्धमें आश्चर्यचिकत हो उठे। बात यह थी कि वे	लिये उनके हृदयमें प्रेरणा की थी। बड़े-बड़े विद्वान् और
प्रतिदिन 'नारायणीयम्' के एक दशककी रचना करते	दर्शनशास्त्रके महारथी उनके मधुर पारायणसे आकृष्ट
थे। उस दिन उन्होंने अभीष्ट दशककी रचना पूरी की	होकर उनके चरणकी वन्दना करते हुए यह अनुभव
ही थी कि अपने सामने एक बालकको बैठे देखा।	करते थे कि समस्त दर्शनशास्त्रके ज्ञानसे कहीं अधिक
बालक बड़ा तेजस्वी दीख पड़ता था। उसके वक्षदेशमें	महत्त्वपूर्ण है—भगवान्की कृपा और अनुग्रह प्राप्त करना।
उपनयन सुशोभित हो रहा था। ऐसा लगता था कि	नब्बे सालसे भी अधिक अवस्थामें उन्होंने सरल
उपनयनसंस्कार अभी दो-चार दिन पहले ही सम्पन्न	मलयालम् भाषामें 'कृष्णकर्णामृत' की रचना की, जो
* पद्मनाभोऽमरप्रभु:। (विष्णुसहस्रनाम १९)	

भाग ९२ \* शैली और विषय-निर्वाहकी दृष्टिसे पूर्वप्रसिद्ध भगवान्ने कहा कि 'अब आप यहींसे मेरी पूजा कर लीलाशुकरचित 'कृष्णकर्णामृत'से भिन्न है। यह एक लीजिये, गुरुवायूर जानेकी आवश्यकता नहीं है'। जिस स्थानपर भगवान्ने दर्शन दिया था, वहाँ एक मन्दिरका मौलिक भक्तिपूर्ण काव्यकृति है। यह काव्य वामपुराधीश भगवान् श्रीकृष्णको सम्बोधित करके रचा गया है और निर्माण किया गया; क्योंकि वह स्थल बायीं ओर था, महात्मा पूनतानम्की मौलिक रचना पद्धतिके अन्तर्गत इसलिये इसका नाम 'वामपुर' रखा गया और वामपुरके यह श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका सारांश है। इसमें मन्दिरमें प्रतिष्ठित भगवद्विग्रह 'वामपुराधीश'के नामसे बताया गया है कि 'श्रीनारायणके नाम-जपके द्वारा विख्यात है। संसारके मायिक बन्धनोंसे मुक्ति प्राप्तकर भगवद्भक्तिका महात्मा पूनतानम्के भगवद्धाम प्राप्त करनेका रसास्वादन करना चाहिये। जिह्वाको सम्बोधित करते हुए विचित्र विवरण उपलब्ध होता है। भगवान्को प्रसन्न महात्मा पूनतानम्की उक्ति है कि 'हे जिह्ने! मैं तुम्हें एक करनेके लिये नृत्योन्मादमें उन्होंने अपना भौतिक शरीर अत्यन्त गुप्त रहस्य बताता हूँ। जब तुम नारायणका नाम छोड़ दिया। एक दिन उन्होंने अपने आराध्य श्रीबालकृष्ण जपने लगो, तब इस पवित्र कार्यमें लज्जा और संकोच और मित्रोंको प्रीतिभोजमें पधारनेका निमन्त्रण दिया। मत करो। श्रीमन्नारायणके नामोच्चारणमें लज्जा किस जब भोजन बन गया और मित्रगण उपस्थित हुए, वे बातकी!' ठीक यही भाव उन्होंने अपनी 'ज्ञानप्पान' अपने प्रधान अतिथि श्रीबालकृष्णका स्वागत करनेके रचनामें व्यक्त किया है कि 'सोते-जागते, निन्दा अथवा लिये अकेले ही सडकपर आ गये। थोडी देरके बाद वे स्तुतिके रूपमें अपने लिये या परायेके लिये तथा पवित्र नाचते-गाते हुए भोज-स्थलपर पहुँचे। वे श्रीबालकृष्णके मन्दिर अथवा अपवित्र स्थलमें स्थित दिनमें एक बार भी अंग-प्रत्यंगका वर्णन करते हुए पद गा रहे थे। उन्होंने श्रीनारायणके नामके उच्चारण अथवा श्रवणसे प्राणी प्रमुख अतिथिके आसनके सामने मर्यादापूर्वक सभी मोक्षपद प्राप्त कर लेता है।' पकवानोंसे पूर्ण भोजनकी थाली रख दी। प्रभुने उनके महात्मा पूनतानम् प्रत्येक मास अपने इष्टदेवका लिये प्रत्यक्ष उपस्थित होकर भोजन स्वीकार किया। दर्शन करने गुरुवायूर जाया करते थे और वहाँ एक भोजकी समाप्तिपर उन्होंने मित्रों और अन्य लोगोंके मन्दिरसे दूसरे मन्दिरमें जा-जाकर श्रीमद्भागवतपुराणका लिये अदृश्य भगवान्से अपनेको विमानमें बैठाकर पारायण किया करते थे। ज्यों-ज्यों वे वृद्ध होने लगे, वैकुण्ठ ले चलनेकी प्रार्थना की। उन्होंने कहा कि त्यों-त्यों गुरुवायूरकी मासिक यात्रा उनके लिये कठिन 'वैकुण्ठसे विमान आया हुआ है।' उनकी स्त्रीने लोगोंसे होती गयी। एक दिनकी घटना है, वे अपने आराध्य क्षमा माँगते हुए निवेदन किया कि 'बुढ़ापेसे मस्तिष्क भगवान् श्रीबालकृष्णका दर्शन करने गुरुवायूर जा रहे कमजोर हो जानेसे वे अकबक कर रहे हैं।' महात्मा थे। बीच रास्तेमें ही उनके पैर आगे बढनेमें शिथिल हो पुनतानमुके कथनमें उनके घरकी दासीने विश्वास किया। गये। वे थककर बैठ गये। उन्होंने गुरुवायूर पहुँचा देनेके लोगोंके देखते-देखते दोनोंने एक ही साथ शरीर लिये मन-ही-मन भगवान्से प्रार्थना की। अपने इष्टदेवके छोड़कर भगवद्धामकी यात्रा की। इस तरह आनन्द-दर्शनके लिये उनका हृदय विह्वल हो उठा। भगवान् नृत्योन्मादमें महात्मा पूनतानम्ने भगवान्का शाश्वत भक्तकी सान्त्वनाके लिये प्रकट हो गये। उन्होंने भक्त सांनिध्य प्राप्त किया। इस समय उनकी अवस्था ९३ पूनतानम्को बालकृष्णके रूपमें दर्शन दिया। उनके वर्षकी थी। वे सन् १६४० ई० तक जीवित थे। महात्मा अधरोंपर वंशी विभूषित थी, मस्तकपर मयूरपंखका पूनतानम् भगवान्के अप्रतिम भक्त और असाधारण मुकुट समलंकृत था, गलेमें माला शोभित थी, कटिदेशमें गृहस्थ संत थे। केरल प्रदेश ही नहीं, मध्यकालीन छुद्रघंटिकाको करधनी बडी रमणीय दीख पडती थी। भारतके वे अनुपम भागवतरत्न थे। उनका नाम अमर है।

संख्या ८ ] ***********		1धेनु ระหรรรษรธธธธธธธธธธธธธธธธธธธธธธธธธธธธธธธธ
कहानी—		 ાં <u>એ</u> નુ
	( श्रीसुदर्शनसि	नंहजी 'चक्र')
आसपास कोई करीरकी लता भी नहीं है	है। हरिताभ	मैंने निकट जाकर वृद्धको अभिवादन किया।
तमाल दूर खड़े प्रहरी–से प्रतीत होते हैं। कदम		उन्होंने मेरी ओर देखा। भीतरतक देख लेनेवाली थी वह
पराग यहाँ वायु यदा-कदा ही पहुँचा पाता	•	दृष्टि। मुझे विवशतः नेत्र झुका लेने पड़े।
चारों ओर प्राकृतिक खाई खोद दी है और द		संकेत पाकर उनके पीछे खंडहरमें गया। उस ट्रटे
प्रान्तमें सूर्यसुता उछलती-कूदती हँसती-सी इ	स एकाकी	ढेरका वर्णन करके समय नष्ट नहीं करूँगा। चहारदीवारीके
नीमके वृक्षको देखती जाती है। खूब सघ	न है यह।	भीतर एक कमरेकी आधी छत शेष थी। उसीके नीचे
खंडहरके बाहर यह अकेला इस प्रकार ख	ड़ा है, जैसे	एक चीनी मिट्टीकी कलईका टीनका प्याला और
कह रहा हो 'मैं स्वयं पूर्ण हूँ। मुझे किसीकी अ	पेक्षा नहीं।'	तसला पड़ा था। एक फटा-सा टाटका टुकड़ा था। मुझे
मैं अक्रूरसे और आगे निकल आया हूँ।	वृन्दावनकी	वही टुकड़ा बैठनेको उन्होंने दिया, लेकिन बैठे हम दोनों
सीमा पीछे छूट चुकी है। पता नहीं क्यों, आ	ज दुपहरीमें	भूमिपर ही।
ही घूमनेकी धुन सवार हुई। बस्तीसे एक	बजे लौट	( ? )
आया। कुटियामें बैठा-बैठा करता क्या? लि	गखनेमें जी	'वेल मि० ह्यूमैन, तुम्हें इन पुस्तकोंसे क्या कभी
नहीं लगा। इधर टहलने और मौलिसरीके	पुष्प चुनने	भी छुट्टी नहीं मिलती?'
आकर दूर निकल आया हूँ।		'ओह, डॉक्टर!' उठकर उस अमेरिकनने महेन्द्रबाबूसे
खंडहर कोई पुरानी धर्मशाला होगी।		हाथ मिलाया। 'मैं आज बड़ी उलझनमें पड़ गया हूँ।
प्रकार मार्गसे दूर जहाँ-तहाँ धर्मशालाओंका		अच्छा, पहले चाय तो पी लो। खानसामा, दो कप चाय!'
साधारण बात है। श्रद्धालुओंने इस आशासे		ढेरों पुस्तकें बिखरी पड़ी थीं। कुछ अंग्रेजीकी थीं,
बनवाया होगा कि कभी इनमें एकान्तप्रिय	य हरिभक्त	कुछ संस्कृतकी तथा कुछ अन्य भाषाओंकी। मेजके एक
निवास करेंगे।		खाली कोनेपर खानसामाने चायके प्याले रख दिये।
् एक दुग्धोज्ज्वल ह्रष्ट-पुष्ट गौ उस न		'आप तो प्रसिद्ध पशु-विशेषज्ञ हैं!' ह्यूमैनने चाय
बैठी पागुर कर रही थी। सुखसे उसके नेत्र अध	•	पीते-पीते कहा 'भारतीय गौकी नस्ल तो बेहद गिर गयी
थे। कभी-कभी पूँछ थोड़ी हिल उठती थी।		है। यद्यपि वह यहींका पशु है।'
शरीरपर एक भी मक्खी नहीं थी, जिसे वह उ	•	'मैंने प्रारम्भमें ही कहा था' डॉक्टरने वैसे ही कहा
मैं उस गौको देखकर आकर्षित हुए बि		'आपको यहाँ कुछ नहीं मिलेगा। अमेरिकन गायोंकी
समीप जाकर बैठ गया। उसने भी एक बार	•	यहाँसे तुलना नहीं की जा सकती।'
मेरी ओर देखा और फिर मेरे कंधेपर मुख		ह्यूमैन एक अमेरिकन पशु-विशेषज्ञ हैं और गायोंकी
प्रकार नेत्र बन्द कर लिये मानो मुझे बहुत पहर		नस्ल सुधारनेके सम्बन्धमें अनेक देशोंमे भ्रमण कर चुके
हो। धीरे-धीरे मैं उसके गलेके निचले भागव	र्ग सहलाने	हैं। उनका कहना है कि गाय भारतीय पशु है और
लगाथा।		किसी-न-किसी प्रकार यहींसे संसारमें फैला है। इसी
'खुदाके लिये…ा' मैंने मुख फेरा। पीडे		विश्वासके आधारपर वे भारतमें अन्वेषण करने आये हैं।
द्वारपर लंबी रजतवर्ण दाढ़ी तथा श्वेत दीर्घ		एक भारतीय विशेषज्ञसे उन्होंने परिचय भी कर लिया है।
एक तेजस्वी वृद्ध चिथड़े लपेटे खड़े थे। वे वु		'लेकिन प्रारम्भमें यहाँकी नस्ल ऐसी नहीं थी।'
कहते रुक गये थे। मैंने गौका मुख धीरेसे कंधे		ह्यूमैन गम्भीर हो गये। 'अच्छा, तुम्हारी किताबोंमें यह
वह इस प्रकार देखने लगी, जैसे मेरा उठना उ	स राचकर	कामधेनु शब्द बार-बार आया है। इसे तुम जानते हो?'
नहीं हुआ।		उनके नेत्र डॉक्टरके मुखपर स्थिर हो गये।

[भाग ९२ 'ओह!' डॉक्टर हँस पड़े 'तो यह है आपकी था।' मैंने क्षमा माँगी। उलझन? आप पुरानी कहानियोंके चक्करमें पड़ गये हैं। 'तुम ठीक ही कहते थे।' उनके स्वरोंमें ग्लानि इनमें कोई तथ्य नहीं है।' आधुनिक विचारोंके कारण थी। 'मैं किसीको गाली नहीं दूँगा। लोग गुमराह हो गये महेन्द्र ऐसी बातोंपर ध्यान देना व्यर्थ समझते थे। हैं। कह नहीं सकता कि वे कैसे ठीक रास्तेपर आयेंगे।' 'मैं इसे ऐसा नहीं समझता' वह अमेरिकन मस्तक झुकाकर वे सोचने लगे। किसी गम्भीर चिन्तामें विशेषज्ञ डॉक्टरकी उपेक्षासे तनिक भी प्रभावित नहीं पड गये दीखते थे। हुआ। उसका मुख और गम्भीर हो गया। चायका प्याला 'क्या आप कुरानकी शिक्षाके सम्बन्धमें कुछ मेजपर रखकर वह सीधा बैठ गया। 'कामधेनुका कहेंगे।' मैंने प्रसंग बदलनेके लिये ही कहा था। वैसे शब्दार्थ तो हुआ चाहे जब और जितनी बार इच्छा हो कोई उत्सुकता मुझमें थी नहीं। उतनी बार दुही जा सकनेवाली। लेकिन किताबोंमें तो 'मैं तो एक अनपढ़ खानसामा हूँ।' उन्होंने कहा दूसरा ही कुछ लिखा है।' 'मैंने कुरानशरीफपर श्रद्धा करना सीखा है। उसे पढ़ 'आपका संस्कृत ज्ञान प्रशंसनीय है।' डॉक्टरको सकूँ ऐसी लियाकत नहीं। फिर भी मैं विश्वास करता इस अमेरिकनपर हँसी आ रही थी। वह क्यों मूर्खतापूर्ण हूँ कि वह एक खुदाई किताब है और उसमें कोई खराब बातोंपर विश्वास करने जा रहा है। 'फिर भी मैं आपको बात नहीं है।' इन गपोड़ोंमें अपना अमूल्य समय नष्ट करनेकी सलाह 'आपने सुना तो होगा ही।' मुझे इस अनोखे नहीं दुँगा।' श्रद्धालुके प्रति कुत्हल हो रहा था। 'मैं प्रयोग करूँगा।' उसे पक्की धुन थी।'मैं ठीक 'उसके लिये मुझे वक्त कहाँ है।' वे सीधे शब्दोंमें तरहसे तुम्हारी किताबोंका अक्षर-अक्षर पालन करके कह रहे थे 'मैं इस अपनी कामधेनुसे छुट्टी ही कब पाता प्रयोग करूँगा। मुझे एक अच्छी गाय ला दो। ऐसी गाय हूँ।' उन्होंने नीमके नीचेकी ओर संकेत किया। 'आपका मतलब शायद उस गायसे है।' मैं उसे जो चाहे जब दुही जा सके और देखो, वह कपिला हो-बस!' अबतक भूल गया था। अब ध्यानमें आया कि वह बिना उत्तरकी प्रतीक्षा किये वह मेजसे उठ खडा इन्हींकी गाय है और उसका शरीर इस बातका साक्षी हुआ। डॉक्टरने देख लिया कि कुछ कहना व्यर्थ होगा। है कि वृद्ध उसकी कितनी सेवा करते हैं। ह्यमैनके इच्छानुसार गाय ढूँढ्नेका वचन देकर उन्होंने 'हाँ, उसी गायसे। जिसके पास तुम अभी बैठे थे।' हाँथ मिलाया। उनके पीठ फेरते-फेरते वह अपनी उन्होंने उल्लाससे कहा 'मैंने समझा था कि कोई उसे पुस्तकोंके ढेरके बीच बैठ चुका था। छेड़ रहा है, इसीसे पुकारा था। लेकिन तुरंत ही मुझे अपनी भूल मालूम भी हो गयी थी।' जैसे वे क्षमा माँग 'आप तो मुसलमान हैं' मैंने वृद्ध महात्मासे पूछा रहे हों। 'आपके धर्ममें तो कुर्बानी…।' 'मैं हिन्दू हूँ। गौको हम देवस्वरूप तथा पूजनीय मानते हैं।' मैं यों ही कह चला था 'उसे छेडने या 'उस पाक परवरदिगारके लिये माफ करो' बडी व्याकुलतासे उन्होंने मुझे रोका। 'किसीको कोई हक सतानेकी कल्पना हमारे सम्बन्धमें करना हमारे साथ नहीं कि कुरानशरीफको बदनाम करे और हजरत अन्याय है।' साहबपर ऐसा दोष मढे।' 'तुम अपनी बात कर सकते हो' उन वृद्धने कहा 'मैं तो आम मुसलमानोंकी धारणाकी बात कह 'यहीं घरोंमे बाँधकर गायको चारा-पानीसे तरसानेवाले रहा था।' मुझे खेद था कि मैंने एक वृद्ध फकीरको हिन्दू कम नहीं हैं। दूधकी आखिरी बूँदतक दुहकर गायके कष्ट पहुँचाया है। उनके नेत्र भर आये थे और मुख बच्चेको तडप-तडपकर मरनेके लिये छोडनेवाले ग्वाले तमीमपे संक्षा निक्कार के हार भूति प्रमान प्रमान के कि प्रमान कि प्रमान के कि प्रमान कि प्रमान के कि प्रमान कि प्रमान के क

संख्या ८ ] काम	मधेनु ३९
**************************************	**************************************
यमराजकी भाँति डण्डा मारनेवाले दूकानदार तो शायद	अनेक उलट-फेर उन्होंने अपने भोजन तथा रहन-
पूरे अहिंसक हिन्दू हैं।' उनके स्वरमें घृणा थी।	सहनमें किये थे। चाय वे छोड़ चुके थे और धूपमें
'हम उसका दण्ड भी पा रहे हैं।' मैंने मस्तक	टहलनेका अभ्यास भी कर चले थे।
झुकाकर स्वीकार किया 'गायोंके मूक अश्रु अभिशाप	घिरे हुए जंगलमें साहब अपने झाड़नसे गायके
बनकर हिन्दूजातिको लग गये हैं और वह अपना	ऊपर बैठनेवाले मक्खी-मच्छर उड़ाते हुए उसके पीछे-
कर्मफल भोग रही है।' मुझे गहरा धक्का लगा था।	पीछे घूमते रहे। कहीं रोकनेकी आवश्यकता नहीं थी।
'अरे नहीं' जैसे मेरे अन्त:कष्टको उन्होंने देख	बड़ी नालियोंमें स्वच्छ जल भरा था। दोपहरको खानसामा
लिया हो 'यह पाप तो आज दुनियाके कुछ आदमी ही	आदेशके अनुसार वहीं भोजन दे गया। पहले दिन
कर रहे हैं और दयाको छोड़कर वे खूँखार बन गये हैं।'	भूमिपर बैठकर साहबने भोजन किया।
इस एकान्तमें भी उन्हें सम्भवत: विश्वकी परिस्थितिका	पतलून छूट गयी। उससे पृथ्वीपर बैठनेमें अड़चन
कुछ आभास मिल जाता था।	होती थी। हाफ पाइंट और हाफ कमीज बस, हैट धूपसे
'आपको यह गाय कहाँ मिल गयी?' इस खंडहर	बचानेको चाहिये ही। काँटा-चम्मच छोड़कर उन्होंने
निवासीके पास खरीदनेके लिये मूल्य तो होनेसे रहा।	हाथसे भोजन करना प्रारम्भ किया। खानसामा शहर
प्रसंग भी नीरस हो गया था। मैंने उसे बदलना ठीक	जाये तो रोटी पहुँचाये कौन? केक, बिस्कुटके बदले
समझा। यह मैं लक्षित कर चुका था कि अपनी गायकी	टिक्कर ठोंके जाने लगे।
चर्चासे वे बहुत उल्लिसत हो उठते हैं।	'साहब क्या पागल हो गया है!' खानसामा
'बड़ी लम्बी कहानी है।' एक दीर्घ श्वास लेकर	कभी-कभी सोचता, वह सुबह गायके पैर धोकर वह
वे चुप हो गये। पता नहीं क्यों उनके नेत्रोंसे अश्रु टपकने	गंदा पानी मुँहमें डालता है। हिन्दुओंकी तरह फूल,
लगे थे।	रोलीसे उसकी पूजा करता है। शामको गायके पास
(8)	घीका चिराग रातभरके लिये जलाता है। जैसे गाय कोई
ह्यूमैनको गाय मिल गयी और उसे पाते ही उन्होंने	बच्चा है, जो अँधेरेमें डर जायगी। रातको चटाई
अपना प्रयोग प्रारम्भ किया। एक-दो दिनमें ही उन्हें पता	डालकर वहीं जमीनपर सो रहता है, दिनभर अकेले
लग गया कि आगरे-जैसे बड़े शहरमें रहकर वे प्रयोग	रहते-रहते वह ऊब जाता था।
नहीं कर सकते। पन्द्रह मील दूर यमुनाकिनारे उन्होंने	'साहब बहुत भला है। भले वह आधा पागल
एक ढाकका जंगल खरीद लिया। वहीं एक छोटा	हो।' कभी-कभी खानसामा सोचता। 'मैं जैसी रोटी
बँगला बनवा लिया और उस गायको लेकर आ गये।	बनाता हूँ, वैसी खा लेता है। गायके पास तो झाडू खुद
सिंचित जंगल घाससे भर जाना ही था। चारों ओर	देता है। कमरेमें भी झाडू न दिया हो तो अपने-आप
काँटेदार तार लगा दिये गये थे। बँगलेपर साहब,	देने लगता है। कभी डाँटता नहीं। तनख्वाह ठीक
खानसामा, गाय और उसकी बछड़ीको छोड़कर कोई	पहलीको दे देता है। खुदा उसका पागलपन दूर करे।'
प्राणी नहीं रहता था।	खानसामाको निश्चय हो गया था कि साहबके दिमागमें
पहले ही दिन खानसामाको आश्चर्य हुआ जब	जरूर कुछ खराबी है।
साहब एक छोटी लकड़ीमें रूमाल बाँधकर सबेरे गाय	'आखिर यह गाय है किसलिये?' सच पूछिये तो
चराने निकले। 'यह मेजको झाड़नेके लिये तो ठीक था,	गायने खानसामाको अच्छी उलझनमें डाल दिया था।
पर गाय चरानेके लिये। फिर साहब एक चरवाहा	'दूध उसकी बछड़ी पीती है। साहब कभी उसे दुहता
क्यों नहीं रख लेते?' बेचारा खानसामा चुप रहा। वह	नहीं और दुहकर करे भी क्या; उसने तो दूध पीना ही
जानता था कि उसका साहब झक्की है।	छोड़ दिया है। जरूर इस गायपर कोई जिंद सवार है
दो महीनोंसे ह्यूमैन अपनेको तैयार कर रहे थे।	और उसीने साहबको पागल बना दिया है।' कई बार

भाग ९२ साहबकी आँख बचाकर वह कलमा पढ़कर गायपर मुझे कहने दीजिये कि सचमुच मैं ऊपरसे 'ना' कह रहा था। उतना स्वादिष्ट दूध जीवनमें फिर मिलेगा, फुँक मार चुका है। 'आज में देखुँगा कि जंगलमें साहब दिनभर क्या ऐसी आशा नहीं। बराबर दोना भरता और पीता रहा। करता है' लगभग छ: महीने बाद उसने एक दिन नीचे भूमिमें दुधका कीचड हो गया। गलेतक भरकर निश्चय किया और उस दिन साहबको रोटी देकर बँगले पीया होगा, तब कहीं थनोंसे उसकी धारा रुकी। 'सचमुच कामधेनु पायी है आपने।' उठकर मुख नहीं लौटा। झाड़ियोंमें छिप रहा वह। 'मदर, मैं क्या निराश ही होऊँगा।' खानसामा पोंछते हुए मैंने कहा। हाथ यमुनाजीमें धोनेका विचार ट्टी-फुटी अंग्रेजी समझ लेता था। गाय आरामसे एक कर लिया था। घने ढाकके नीचे बैठी थी। उसकी बछड़ी इधर-उधर 'यह मेरे साहबकी कामधेनुकी बछड़ी है।' उन्होंने बताया 'इसने कभी कोई बच्चा नहीं दिया।' फुदक रही थी और साहब उसके सामने घुटनोंके बल बैठा हुआ था, उसने हाथ जोड रखे थे और बेतरह रो 'कामधेनु तो केवल दूध ही नहीं देती।' मैंने रहा था। उत्सुकतावश पूछा। 'मुझ फकीरको इस पेटके गड्ढेको भरनेके अलावा खानसामा चीख पडा। यह क्या? गाय आदमी-जैसी साफ अंग्रेजी बोल रही है। वह भयके मारे बेहोश और चाहिये भी क्या।' वे गद्गद हो रहे थे। 'फिर हो गया। पता नहीं कबतक वह वैसे ही पड़ा रहा। मुझमें उतनी श्रद्धा कहाँ है ? मैं वैसी सेवा कहाँ कर पाता जब उसकी आँखें खुलीं तो वह बँगलेमें पलंगपर हूँ।' उनके नेत्रोंने कपोलोंको भिगो दिया था। 'वह तो साहब ही थे' थोड़ी देर रुककर वे बोले लिटाया हुआ था और उसका साहब सामने खड़ा मुसकरा रहा था। 'उन्हें कामधेनुने खुदाका जलवातक दिखाया और वह खुद उन्हें लेकर उस मालिकके दरबारमें चली गयी।' (4) 'फिर कभी दर्शन करूँगा' मैं उठ खडा हुआ। बहुत पूछकर भी मै इस अन्तिम वाक्यका मतलब नहीं चार बज गये थे और मैं कुटियासे डेढ़ मील दूर था। समझ सका। उन्होंने मुझे 'देर होती है, जाओ।' कहकर जाड़ोंमें अँधेरा भी तो जल्दी होता है।' दिन छिपनेतक बिदा कर दिया। पहुँच जानेका विचार था। अन्ततः अपने गोपालके पास दीपक भी तो जलाना है। मैं जब कुटियासे बाहर प्रात: बैठता हूँ तो शामको 'दूध तो पीते जाओ!' वे वृद्ध उठ खड़े हुए। बाहर भिगोये चनोंका जो मेरे गोपालको भोग लग चुका होता एक नन्हा-सा ढाक था। कुल पाँच-सात पत्ते होंगे है-भाग लेने मयूरोंका झुंड आ जाता है। कई छोटे बछड़े आ जाते हैं और यदा-कदा एक-दो गायें भी। उसमें। एक बड़ा-सा पत्ता उन्होंने तोड़ लिया और मेरे उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना दोना मेरे हाथमें धर दिया। आज प्रात: मयूर आ गये हैं। वे तीनों, पर फैलाकर गाय नीमके नीचे खडी हो गयी थी। 'तुम थनोंके नाच रहे हैं। ये पाँचों बछडे प्राय: रोज आते हैं। बडे पास बैठभर जाओ।' वे गायके सामने घुटने टेककर बैठ नटखट हैं। सारा चबूतरा कूदकर खोद डालते हैं। आज चुके थे। 'अम्मा, अपने घर ये मेहमान आये हैं।' मैं तो कपिला आयी है और नीचे खड़ी हुंकारसे चने माँगती आश्चर्यचिकत रह गया। गायके चारों थनोंसे दुधकी है शायद। धारा बहने लगी थी। सहसा कल शामकी बातें स्मरण हो आयीं। 'ये 'बस' एक दोना पीकर मैंने कहा। इतने रूपोंमें साक्षात् धर्म मुझे वेष्टित किये हैं और वे 'उहुँ, दूध खराब मत करो।' वे पीछे खड़े हँस रहे कामधेनु पुकार रही हैं।' मैंने सब चने गायके सम्मुख थे। 'अब यह तुम्हारे बसकी बात नहीं। दूध गिरे, चबूतरेपर डाल दिये और नीचे जाकर उसकी चरण-रज वहाँतक चुपचाप पीते जाओ।' मस्तकसे लगा ली!

क्या सुख-भोग ही जीवन है? संख्या ८ ] क्या सुख-भोग ही जीवन है? (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) क्या सुख-भोग ही जीवन है? नहीं, सुख-भोग दास नहीं है, वह दुखी नहीं होता। इसलिये दु:खसे बचनेके जीवन हो ही नहीं सकता। क्यों? क्योंकि सुख हमेशा लिये सुखकालमें सुखकी वासनाका त्याग अनिवार्य है।' बना नहीं रह सकता। जीवन तो उसे कहते हैं जो नित्य, सुख-दु:खका सदुपयोग है क्या? दु:खके भोगसे अविनाशी, रसरूप है। बचनेके लिये उन कामनाओं जिनकी अपूर्ति और जिन सुख है क्या? सुख एक परिस्थितिमात्र है और वासनाओंके कारण ( जैसे नेत्रहीन है तो देखनेकी वासना) परिस्थिति हमेशा एक-जैसी नहीं रहती-प्राकृतिक नियमके दु:ख हो रहा है तो उनका त्याग करना है और सुखका भोग अनुसार निरन्तर बदलती रहती है। जहाँ सुख होगा, वहाँ न करके सुखद परिस्थितिका सदुपयोग सेवामें करना है। दु:खको भी होना ही है। संयोगका सुख है तो वियोगका कोई भी सर्वांशमें न तो दुखी होता है और न ही सर्वांशमें सुखी। अत: जिस अंशमें दु:ख है तो त्याग अपनायें और जिस अंशमें दु:ख होगा ही, उससे बचा नहीं जा सकता। इसीलिये कहा है कि सुख रोकनेपर भी चला जाता है और दु:ख सुख है तो सेवा करें। यही सुख-दु:खका सदुपयोग है। बिना बुलाये चला आता है। या यूँ कहें कि कोई भी सुखद परिस्थितिमें सेवा क्या है ? इसके बारेमें बडा सुखको जानेसे और दु:खको आनेसे नहीं रोक सकता। भ्रम है। जबतक हम उदार नहीं होंगे, सेवा हो ही नहीं सुख, दु:ख है क्या? अनुकूल परिस्थिति सुख है, सकती। उदारका यह अर्थ नहीं है कि मन्दिरमें पंखे टँगवा प्रतिकूल परिस्थिति दु:ख है। कामनापूर्ति सुख है और दिये और तीन पुश्तका ब्लेडपर नाम लिखवा दिया। प्याऊ कामना-अपूर्ति दु:ख है। ऐसा होता ही नहीं कि तो लगाया, परन्तु वहाँ अपने नामका बड़ा बैनर लगा दिया। किसीकी सभी कामनाएँ पूरी हों और किसीकी एक भी उदारता का अर्थ होता है दु:खियोंको देखकर कामना पूरी न हुई हो। सभीकी कुछ कामनाएँ पूरी होती करुणित होना और सुखियोंको देखकर प्रसन्न होना। जब हैं और कुछ नहीं पूरी होतीं। राजा दशरथकी भी तो यह हमारे जीवनमें उतर जायगा। तब हमसे स्वत: स्वभावत: कामना पूरी नहीं हुई—वह रामको युवराज बनाना चाहते सेवा होगी। शरीरबलका सुख है तो निर्बलोंके काम थे और हुआ क्या? राम वनको चौदह वर्षके लिये गये। आयेंगे—धनबल है तो निर्धनोंके काम आयेंगे, आदि। यह जीवनका अकाट्य सत्य है कि सुख और दु:खका जिन साधनोंसे हम सेवा करते हैं उन्हें सेव्यकी ही क्रम हर-एकके जीवनमें रहेगा ही। अत: यदि हम सुख-धरोहर मानकर सेवा करेंगे तब तो सच्ची सेवा होगी और भोगको ही जीवन मान लेंगे तो दु:ख भी भोगना ही पड़ेगा। अपने विकासके लिये हितकारी होगी, अन्यथा हम कर्तृत्वके अभिमानमें फँस जायँगे। वस्तुतः जो सुखको बनाये तो प्रश्न उठता है कि सुख आया तो उसका भोग न करें तो क्या करें और क्या सुख-दु:खसे अतीत भी रखनेका प्रयत्न करता है, सुख उससे छिन जाता है और कोई जीवन है ? है, और उसकी प्राप्ति बहुत सहज है। जो सुखको बाँट देता है, उसे आनन्द मिल जाता है। सिर्फ दृष्टिकोण बदलना है, जो हर-एकके लिये सम्भव जब हम सुख-दु:खका सदुपयोग करके सुख-है। वह है, प्रभूसे प्रार्थना— दु:खसे अतीत जीवनमें प्रवेश पाते हैं, तब भगवान 'मेरे नाथ, ..... दुखी प्राणियोंके हृदयमें त्यागका बल रामकी तरह युवराज पद (सुख)-से न हर्ष होता है और और सुखी प्राणियोंके हृदयमें सेवाका बल प्रदान करें .....। न वनवास (दु:ख)-से विषाद। हम समतामें रहते हैं। इस प्रश्न 'क्या सुख-भोग ही जीवन है ?' का बहत वस्तुतः सुख-दुःख मात्र साधन-सामग्री है। उसका सदुपयोग करके हम वास्तविक रस-रूप जीवनको प्राप्त सहज, स्पष्ट और सुन्दर उत्तर मुंशी प्रेमचन्दद्वारा लिखी कहानी 'ईदगाह' के नायक बालक हामिदने दिया है, करते हैं। यदि हम सुखका भोग करेंगे अर्थात् सुखमें जीवन-जिसने ईदके मेलेमें गुब्बारों, मिठाई और खिलौनोंके प्रति बुद्धि होगी तो दु:ख भोगना ही पड़ेगा। अन्यथा 'जो सुखका बाल-सुलभ आकर्षणपर विजय प्राप्त करते हुए अपनी

दादीमाँके लिये लोहेका एक चिमटा खरीदा। क्यों? लिये जी रहे हैं तो भोग, दूसरोंके लिये जी रहे हैं तो क्योंकि उसकी आँखोंके सामने तो तवेपर रोटी सेंकते सेवा। यही सिद्धान्त है। 'जो दूसरोंके हितके लिये जीता समय चिमटेके अभावमें दादीमाँकी उंगलियोंके जलनेका है, वह महान् है। जो अपने लिये जीता है, वह अभागा

भगवान् कृष्णका प्राकट्य

प्रश्नगत शीर्षकका उत्तर इसमें भी निहित है कि

दुश्य तैर रहा था। अधिकांश लोगोंने यह कहानी पढी

होगी। जिन्होंने न पढ़ा हो, वे अवश्य पढ़ें-जीवनका

हम सिर्फ अपने लिये जी रहे हैं, या दूसरोंके लिये। अपने

अर्थ और जीनेकी सही राह मिल जायगी।

( श्रीरामेश्वरजी पाटीदार )

[ कविके द्वारा 'श्रीकृष्णचरितमानस' के नामसे एक अत्यन्त लालित्यपूर्ण, पद्यबद्ध ग्रन्थकी रचना हुई है, जिसमें

भगवान् कृष्णकी प्रायः सभी मुख्य लीलाओंका आठ काण्डोंमें वर्णन किया गया है। इसी ग्रन्थके 'कृष्ण-जन्म-प्रसंग' को यहाँ सानुवाद प्रकाशित किया जा रहा है—सम्पादक ]

अनुकूल भे सब असुभ ग्रह अरु अधम घन नभ दुरि गए। रोहिनि नखत पर ससि चलेउँ सब जोग सुभ फलप्रद भए॥ दुष्टनिकन्दन जब अवतरित होनेवाले थे, वह शुभ

घड़ी अत्यन्त निकट आ गयी। सारी दिशाएँ उज्ज्वल हो

घाती खलन्हँ अवतरिहिं जब घरि सुभ सो परम निकट अई।

भइ सकल दिसि उज्ज्वल मधुर स्वर कोकिला बोलत भई॥

गयीं और कोयल कोमलवाणीसे बोलने लगी। सारे अमंगलकारी ग्रह शुभ अवस्थामें आ गये और पापी ग्रह घने आकाशमें जा छिपे। जब चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्रमें भ्रमण करने लगा, तब सारे योग शुभफलदायक हो गये।

सब सरित भइ मृद् सलिल कल कल करत निज निज दिसि बहे। सोभित सकल तरु बाग कानन फूल फल बिनु रितु लहे॥ निज बछुन्हँ लिख सब धेनु अयनिह नेह अमिय बहावहीं।

सब साक आमिष भोजि तजि निज बैर प्रीति बढ़ावहीं॥ सारी नदियाँ मृदुल जलसे पूरित हो कल कल

ध्वनिसे अपनी अपनी दिशाओंसे बहने लगी। वन एवं उद्यानोंके समस्त (ऋतुव्रती) वृक्ष बिना ही ऋतुके फुलों एवं फलोंसे लद गये। अपने बछड़ोंको देखकर गायें

अपने स्तनोंसे स्नेहरूपी अमृत बहाने लगी। समस्त शाक एवं मांस खानेवाले जीव वैर त्यागकर परस्पर प्रेम बढ़ाने लगे।

सुर नाग किंनर जच्छ अरु गंधर्व नाचत सोहहीं॥

सिवसम्भु अज प्रमुदित करिंह अस्तुति जगत आधार की।

मनु सकल सुभ लच्छन करिहं अगवानि प्रभु अवतार की।।

है। दूसरोंके हितके लिये जीओ। सुख-भोगके लिये

जीना पाप है। दूसरोंके लिये जीना महान् पुण्य है।'

of sharing)-का रसास्वादन कर लिया है, वह सुखका

भोगी हो ही नहीं सकता। [प्रेषक-श्रीहरी मोहनजी]

एक बात और, जिसने सुख बाँटनेके आनन्द (Joy

भाग ९२

पुष्पोंसे आच्छादित होकर अत्यन्त मनोहर हुई चारों दिशाएँ हर्षसे भरकर मधुरध्वनिसे गाने लगी। देवता, नाग, किन्नर, यक्ष और गन्धर्व नाचते हुए शोभा पाने लगे हैं। शिवजी और ब्रह्माजी बडे आनन्दसे भगवानुकी स्तृति करने लगे; मानो ये सब शुभशकुन

भगवान्के अवतारकी अगवानी कर रहे हों। भादौ बदि आठवँ दिवस बुध कर सुभद रहेउँ। उदित प्राचि बृष रोहिनि नखत इन्दु पैठेउँ॥ भादौ माहके कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथिको, जब

बुधका शुभदायक वार था, उस समय पूर्व दिशामें वृष

राशि उदित हो रही थी, जिसके रोहिणी नक्षत्रमें चन्द्रमाने प्रवेश किया। रिद्धि सिद्धि महि प्रगटि नृप बरषिं जलद प्रधार। रही अरध निसि बंदिगृह प्रगटे तारनहार॥

हे परीक्षित! पृथ्वीपर रिद्धि-सिद्धि प्रकट हो गयी और मेघ जलकी मोटी-मोटी धाराएँ बरसाने लगे। वह अर्धरात्रिका समय था, जब बन्दीगृहमें संसारको तारनेवाले

भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए। गामिक ताधार भी के हिर्फिल समासाध्यः अधिक समेह ही dharma | MADE WITH LEXUE के भी अयोगक हो निर्देश ताधार के स्व संख्या ८ ] साधनोपयोगी पत्र साधनोपयोगी पत्र भविष्य-जीवनमें अपने लिये दु:खकी नींव खोद ली। (१) कर्मका उत्तरदायित्व कर्तापर है इसी प्रकार स्त्री-सुख भी पूर्वकर्मका निर्धारित फल सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला। .... सगोत्र हो सकता है; किंतु उसे पानेके लिये सन्मार्ग भी है, असत् मार्ग भी है। शास्त्रके अनुसार विधि-निषेधके विवाहका शास्त्रोंमें एक स्वरसे निषेध किया गया है। सगोत्रा स्त्रीसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, उसे चाण्डालके समान पालनपूर्वक अपने वर्णकी उत्तम कन्याके साथ जो वैदिक माना गया है। यदि अनजानमें सगोत्रा कन्यासे विवाह हो विधिसे विवाह सम्पन्न होता है, वह सन्मार्ग है। सगोत्रा जाय तो उसे त्यागकर प्रायश्चित्तके रूपमें चान्द्रायण व्रत कन्या अथवा नीच कुलकी कन्याको कामवश अपनाना, करनेका विधान मिलता है। इससे सिद्ध है कि सगोत्र कन्याके परायी स्त्रियों अथवा वेश्याओंसे सम्बन्ध स्थापित करना साथ किया गया विवाह सम्बन्ध पाप है। तभी उसके लिये आदि पाप एवं असन्मार्ग हैं। यह पहलेसे विधि निर्धारित प्रायश्चित्त बतानेवाले वचनोंकी संगति लगती है। था, ऐसा नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इसके लिये पाप और पुण्यमें मनुष्य केवल अपनी इच्छासे प्रवृत्त शास्त्रोंमें स्पष्टत: दण्डविधान किया गया है। होता है। शास्त्रोंने पापका निषेध और पुण्यका विधानमात्र शास्त्रकी मर्यादा यही है। यही धर्म है और यही कर दिया है। पापीको दण्ड और पुण्यात्माको उसके कर्मानुसार ईश्वरकी आज्ञा है। इसीके पालनसे मनुष्यका भला हो पुरस्कार मिलता है। यदि केवल प्रारब्ध या दैवकी प्रेरणासे सकता है। शेष प्रभुकृपा। पापमें प्रवृत्ति हो तो मनुष्यको दण्ड और पुरस्कार नहीं (२) हिन्दु विधवा बहनके साथ कैसा बर्ताव करें? मिलने चाहिये। किंतु कर्मोंका फल भोगना ही पड़ता है, ऐसा शास्त्रका वचन है। अत: यह निर्विवाद सिद्ध है कि सादर हरिस्मरण। आपका पत्र यथासमय मिल कर्मोंके करनेका सारा उत्तरदायित्व कर्तापर ही है। गया था, उत्तरमें विलम्बके लिये क्षमा करेंगे। आप धन, भोग-सामग्री, सुख एवं दु:ख आदि अपने लिखते हैं 'मैं जातिका मोहमडन हूँ, किंतु मेरे हृदयमें पूर्वजन्मोंके कर्मोंके फल हैं। किसको कितना सुख, कितना सदा दयाका स्रोत बहता रहता है। मनुष्यमात्रकी सेवा दु:ख मिले—यह प्रारब्धपर निर्भर है। किंतु उसे प्राप्त करनेके करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।' यह बहुत ही लिये जो चेष्टा होती है, वह मनुष्यकी अपनी रुचिसे होती अच्छी बात है। अपका यह गुण आपके अन्य बन्धुओंके है। अत: यदि वह चेष्टा शास्त्रानुकूल, धर्म और न्यायसे लिये भी अनुकरणीय है। वास्तवमें दया तो मनुष्यमात्रका युक्त हुई तो वह पुण्य है और उसका भावी फल भी गुण होना चाहिये। हिन्दू हो या मुसलमान, निर्दयता सुखमय है; इसके विपरीत यदि शास्त्रविरुद्ध, अधर्म और सभीके लिये कलंककी बात है। मनुष्यकी ही क्यों, अन्यायसे युक्त चेष्टा हुई तो उसका भावी फल दु:ख है, सम्पूर्ण जीवमात्रकी सेवाको परम कर्तव्य समझना चाहिये। क्लेश है। जैसे किसीको दस हजार रुपये मिलना है, यह चींटीसे लेकर मनुष्यतक सभी प्राणी भगवान्के अंश हैं; प्रारब्धका फल है; किंतु उसे प्राप्त करनेके अनेक मार्ग हैं। अतः भगवद्बृद्धिसे उनकी सेवा, उन्हें सुख पहुँचानेकी प्रारब्ध मार्गका निर्देश नहीं करता; उसे चुनता है मनुष्य चेष्टा करना ही सच्ची भगवत्सेवा है। अपनी ही इच्छासे। वह उसके लिये धर्म एवं न्यायपूर्वक आपने इसी भावसे 'एक हिन्दू विधवा बहनकी व्यापार भी कर सकता है, और चोरी आदि अन्यायसे भी भलाईके लिये अपना तन-मन-धन लगा रखा है,' यह बड़े सौभाग्यकी बात है। निराश्रयको आश्रय देना, उसे प्राप्त कर सकता है। एक मार्ग पुण्यमय है और दूसरा

असहाय और अनाथ विधवाओंकी रक्षा करना सबके

लिये महान् पुण्यकार्य हैं। परंतु इसके लिये शुद्ध नीयत

पापमय है। दोनोंसे धन उतना ही मिलेगा, जितना प्रारब्धमें

है; किंतु असत् मार्गको जिसने स्वेच्छासे अपनाया, उसने

भाग ९२ \* \* दूसरोंके सामने उनसे भेंट करें। भाई-बहनकी भेंट और हृदयकी पवित्रता अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य एकान्तमें या लुक-छिपकर क्यों हो? बहुधा आदर्शके नामपर मोहका शिकार हो जाता है। २-वहाँ हिंदू-समाजमें जो कोई वृद्ध, सदाचारी विशुद्ध प्रेमके धोखेमें आकर आसक्ति और वासनाके तथा उदार एवं दयालु पुरुष हों, उनसे प्रार्थना करके उन अतल गर्तमें आकण्ठ मग्न हो जाता है। यह स्थिति बडी भयंकर है। इससे पग-पगपर सावधान रहना चाहिये। बहनकी देख-भालका कार्य उन्हें सौंपें। अच्छे घरकी आपने उन विधवा बहनकी युवावस्था, कट्-स्वभाव और सती-साध्वी स्त्रियोंसे उन बहनका मेल-जोल बढे और अनुचित प्रवृत्तिका जो चित्र उपस्थित किया है, उसका वे उनके संगसे लाभ उठायें। आप-जैसे युवकके मनपर विपरीत प्रभाव पडना असम्भव ३-उनके धार्मिक आचार-विचार तथा धार्मिक नहीं है तथा उनके और आपके एकान्त मिलनको देखकर भावको प्रोत्साहन देनेके लिये आप अपने लिखित विचार जो वहाँके लोग सन्देह करते हैं, यह भी अस्वाभाविक उनके सामने रखें, जिसे वे स्वयं भी पढें और दूसरोंको नहीं है। इस परिस्थितिमें भी आपकी भावना कहाँतक भी पढ़ा सकें। इसके अलावा उन्हें गीता प्रेसकी धार्मिक पवित्र है, इसका ज्ञान या तो आपको होगा या आपके पुस्तकें, कल्याण तथा सतियोंके जीवन-चरित्र पढ़नेको हृदयमें बैठे हुए अन्तर्यामी भगवानुको। दुसरे लोग तो दें। वे प्रतिदिन तुलसीकृत रामायणका पाठ और भगवानुके आपके और उनके बाह्य आचार और विचारको देखकर नामोंका जप किया करें तो बडा लाभ होगा। इससे उन्हें ही कुछ धारणा बनाते होंगे। यदि आप सच्चे हैं तो इन शान्ति मिलेगी, मनसे बुरे विचार निकल जायँगे और बातोंसे आपको घबराना या भयभीत होना नहीं चाहिये। आपकी ओरसे प्रवृत्ति हट जायगी। विरोधकी आँचमें आप अपने खरेपन और खोटेपनकी ४-उन बहनसे मेरा यही अनुरोध है कि अब भी परख कर सकते हैं। आपमें कोई दोष नहीं है तो वे अपनेको सुधारें। मनुष्यका शरीर बार-बार नहीं विरोधियोंको एक-न-एक दिन अपनी भूल अवश्य मालूम मिलता। इसको पाकर जो अपने कल्याणके लिये यत्न होगी और वे आपका आदर भी करेंगे। न भी मालूम नहीं करता, वह मृढ और भाग्यहीन है। पूर्व-जन्ममें न होगी, तो भी आपकी यथार्थमें कोई हानि नहीं होगी। जाने कौन-सा अपराध हुआ था, जिससे उन्हें इस 'निन्दनीय कार्यसे डरना चाहिये, न कि निन्दासे'— जन्ममें किशोरावस्थामें ही वैधव्यका कष्ट भोगना पडा। आपके इस कथनका मैं समर्थन करता हूँ। आप निन्दासे अब और भी पाप बढनेपर उन्हें किन नरकोंमें सडना पड़ेगा, यह कहा नहीं जा सकता। जो विधवा स्त्री संयम बचनेके लिये उन बहनको धोखा नहीं देना चाहते, यह विचार उत्तम है। यदि आप दोनोंके हृदयमें एक-दूसरेके छोड़कर भोगविलासमें आसक्त होती है और मर्यादाका प्रति भाई-बहनका ही भाव है तो समाजके लिये सन्देह उल्लंघन करके अपने जीवनको कलंकित करती है, वह और विरोधका कोई कारण नहीं रह जाता। यह आपकी अपने ही हाथों अपने पैरोंमें कुल्हाडी मारती है। उनको ही दुर्बलता है कि समाज आपके इस वास्तविक अब भी चेतना चाहिये, धर्म और सदाचारकी रक्षा करनी सम्बन्धका अनुभव नहीं कर पाता। मेरी रायमें आपको चाहिये। वे पापपंक में डूबकर अपनेको धधकती हुई नीचे लिखी बातोंपर ध्यान देना चाहिये और उन्हें काममें नरकाग्निमें न झोंकें। पिछले पापोंके लिये रोकर सच्चे लानेकी चेष्टा करनी चाहिये। हृदयसे भगवान्से क्षमा माँगें। याद रखें—वे हिन्दू १-कर्तव्य या सेवाके भावसे, कोई स्वार्थ या देवियोंकी सन्तान हैं, जो सतीत्वकी रक्षाके लिये हँसते-कामना मनमें न रखकर आप उन बहनकी सब प्रकारसे हँसते प्रज्वलित अग्निमें कूद पड़ती थीं। अत: उन्हींके उचित सहायता करते हुए भी उनसे मिलना-जुलना बन्द पद-चिह्नोंपर चलकर भगवान्का भजन करते हुए अपने कर दें। यदि कभी कार्यवश मिलना आवश्यक हो तो जन्म और जीवनको सफल करें। शेष प्रभुकुपा।

व्रतोत्सव-पर्व

### व्रतोत्सव-पर्व गायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद कृष्णपक्ष

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

१७ '' भद्रा प्रातः ६।५३ बजेतक, धनुराशि दिनमें ८।१ बजेसे, कन्या-

**मूल** दिनमें १०।१ बजेतक।

श्रीवामनद्वादशीव्रत।

अनन्तचतुर्दशीव्रत

बजेसे, व्रत-पूर्णिमा।

२५ '' पूर्णिमा, प्रतिपदाश्राद्ध।

मकरराशि रात्रिमें ७।० बजेसे।

संक्रान्ति रात्रिमें ९।५४ बजे, श्रीराधाष्टमीव्रत, विश्वकर्मापूजा, शरदऋतु प्रारम्भ।

भद्रा दिनमें ११।५७ बजेसे रात्रिमें १२।५८ बजेतक, पद्माएकादशीवृत (सबका)।

कुम्भराशि प्रातः ६ । ४८ बजेसे, पंचकारम्भ प्रातः ६ । ४८ बजे, शनिप्रदोषव्रत ।

भद्रा प्रात: ६।३२ बजेसे रात्रिमें ७।६ बजेतक, मीनराशि सायं ५।४२

सं० २०७५	, স্থা	क १९४०, सन्	२०१८,	सूर्य	दक्षिण
तिथि	वार	नक्षत्र	दिन	गंक	

अष्टमी रात्रिमें ७ । २७ बजेतक | सोम | ज्येष्ठा दिनमें ८ । १ बजेतक |

गुरु

शुक्र

शनि

रवि

सोम

पूर्णिमा" ७।४१ बजेतक मंगल उ०भा० ग १।३६ बजेतक

मंगल मूल 🔑 १०। ११ बजेतक

बुध | पू० षा० " १२।२२ बजेतक |

उ०षा " २।५५ बजेतक

श्रवण सायं ५।३२ बजेतक

धनिष्ठा रात्रिमें ८।३ बजेतक

शतभिषा 🤊 १०।१८ बजेतक

पू०भा० 🦙 १२।१० बजेतक

नवमी 😗 ९।२ बजेतक

दशमी '' १० ।५५ बजेतक

एकादशी 😗 १२ ।५८ बजेतक

द्वादशी <table-cell-rows> ३। २ बजेतक

त्रयोदशी रात्रिशेष ४।५६ बजेतक

चतुर्दशी प्रात: ६ ।३२ बजेतक

चतुर्दशी अहोरात्र

संख्या ८ ]

		`	,	6 / / /
प्रतिपदा सायं ५।५० बजेतक	सोम	शतभिषा दिनमें ३।२ बजेतक	२७ अगस्त	× × ×
द्वितीया रात्रिमें ६ ।५५ बजेतक	मंगल	पू०भा० सायं ४।४९ बजे	२८ ,,	मीनराशि दिनमें १०।२३ बजेसे।
तृतीया 🕶 ७। ३६ बजेतक	बुध	उ०भा० " ६।९ बजेतक	२९ ,,	भद्रा दिनमें ७। १६ बजेसे रात्रिमें ७। ३६ बजेतक, कज्जली तीज, संकष्टी
				<b>( बहुला ) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय</b> रात्रिमें ७।५० बजे, <b>मूल</b> सायं ६।९ बजेसे।
चतुर्थी '' ७।४२ बजेतक	गुरु	रेवती रात्रिमें ६।५७ बजेतक	३० ,,	<b>मेषराशि</b> रात्रिमें ६।५७ बजेसे, <b>पंचक</b> समाप्त रात्रिमें ६।५७ बजे।
पंचमी " ७। १९ बजेतक	शुक्र	अश्वनी 🔈 ७। १६ बजेतक	३१ ,,	<b>श्रीचन्द्रषष्ठी, चन्द्रोदय</b> रात्रिमें ९। ३० बजे, <b>मूल</b> रात्रिमें ७।१६ बजेतक,
				पू०फा० का सूर्य सायं ५।३७ बजे।
षष्ठी सायं ६। २६ बजेतक	शनि	भरणी 🗥 ७। ६ बजेतक	१ सितम्बर	भद्रा सायं ६।२६ बजेसे, वृषराशि रात्रिमें १२।५६ बजेसे, हलषष्ठी ( ललहीछ्ठ )
सप्तमी 🗤 ५।८ बजेतक	रवि	कृत्तिका सायं ६। २९ बजेतक	२ ,,	भद्रा प्रात: ५। ४७ बजेतक, श्रीकृष्णजन्माष्ट्रमीव्रत।
अष्टमी दिनमें ३।२८ बजेतक	सोम	रोहिणी '' ५। ३४ बजेतक	३ ,,	मिथुनराशि रात्रिशेष ४।५६ से, उदयव्यापिनी रोहिणी मतावलम्बी वैष्णवोंका श्रीकृष्णजन्मव्रत।
नवमी " १।२९ बजेतक	मंगल	मृगशिरा दिनमें ४। १९ बजेतक	٧,,	भद्रा रात्रिमें १२। २२ बजेसे।
दशमी '' ११।१६ बजेतक	बुध	आर्द्रा '' २।५५ बजेतक	५ ,,	भद्रा दिनमें ११।१६ बजेतक।
एकादशी '' ८।५४ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु '' १। १४ बजेतक	ξ ,,	कर्कराशि दिनमें ७।३८ बजेसे, जया एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी प्रात: ६।२७ बजेतक	शुक्र	पुष्य " ११। ३३ बजेतक	७ ,,	<b>भद्रा</b> रात्रिशेष ४।० बजेसे, <b>प्रदोषव्रत, मूल</b> दिनमें ११।३३ बजेसे।
चतुर्दशी रात्रिमें १।४० बजेतक	शनि	आश्लेषा 🗥 ९ । ५५ बजेतक	۷ ,,	<b>भद्रा</b> दिनमें २।५१ बजेतक, <b>सिंहराशि</b> दिनमें ८।२१ बजेसे।
अमावस्या " ११। २९ बजेतक	रवि	मघा " ८। २१ बजेतक	९ ,,	कुशोत्पाटिनी अमावस्या, मूल दिनमें ८। २१ बजेतक।
सं० २०७५,	शक	१९४०, सन् २०१८,	सूर्य द	क्षिणायन, वर्षा-शरद-ऋतु, भाद्रपद शुक्लपक्ष
तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ९ । ३१ बजेतक	सोम	पू०फा० प्रात:६। ५९ बजेतक	१० सित०	कन्याराशि दिनमें १२।४२ बजेसे,
द्वितीया 😗 ७। ५३ बजेतक	मंगल	उ०फा० 😗 ५। ५३ बजेतक	११ ''	× × ×
तृतीया 😗 ६। ३८ बजेतक	बुध	चित्रा रात्रिशेष ४।४५ बजेतक	१२ ′′	तुलाराशि सायं ४।५७ बजेसे, हरितालिका तीजव्रत, चन्द्रदर्शन निषिद्ध।
चतुर्थी सायं ५।४७ बजेतक	गुरु	स्वाती '' ४। ४८ बजेतक	१३ ′′	भद्रा प्रातः ६।१२ बजेसे सायं ५।४७ बजेतक, <b>वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।</b>
पंचमी " ५। २६ बजेतक	1 ~ 1	विशाखा ग५।२३ बजेतक	१४ "	वृश्चिकराशि रात्रिमें ११।१५ बजेसे, ऋषिपंचमी।
षष्ठी '' ५। ३६ बजेतक		अनुराधा अहोरात्र	१५ "	लोलार्कषष्ठी व्रत।
सप्तमी 😗 ६। १८ बजेतक	रवि	अनुराधा प्रात: ६।२८ बजेतक	१६ ''	भद्रा सायं ६।१८ बजेसे, मूल प्रात: ६।२८ बजेसे, महारविवार व्रत।

१८ "

१९ "

२० "

२१ "

२२ "

२३ "

28 "

कृपानुभूति

# श्रीगोवर्धन महाराजकी कृपा

यह घटना सन् २००० ई० के सितम्बर मासकी है। मैं जा रहा था। तो सामने क्या देखता हूँ कि सामनेसे ७-८ प्रत्येक पूर्णमासीको गोवर्धन महाराजकी परिक्रमा करने जाता वर्षका बालक पीली धोती, पीला कुर्ता (बगलबन्दी), पीली पीताम्बरी, सिरपर पीला पटुका बँधा हुआ है, अति सुन्दर था। एक बार मैं कच्ची परिक्रमा अर्थात् गिरिराजजीके सहारे-

सहारे परिक्रमा कर रहा था, तो मेरे साथ ३-४ भद्रपुरुष और साथ हो लिये, परिक्रमा में पूँछरीके लोढ़ाके पास पहले ही

पहाड़की समाप्तिपर मोड़ आता है और मुड़ते ही वहाँ एक

श्रीनाथजीका मन्दिर है, मैंने उसके कभी दर्शन नहीं किये थे, सीधे ही निकल जाता था। उन तीन-चार परिक्रमार्थियोंने

कहा कि इस मन्दिरके दर्शन करके चलेंगे। तो मैंने उस

मन्दिरके दर्शन किये। वह श्रीनाथजीका मन्दिर था। वहाँ एक

बूढ़े बंगालीबाबा रहते थे, जिनकी उम्रका पता नहीं न जाने कितनी होगी। मैंने उनके तथा श्रीनाथजीके दर्शन किये। दर्शन करनेके बाद मुझे बड़ी शान्ति मिली। तबसे मैं हर

महीने परिक्रमा करते समय उस मन्दिरके दर्शन करते हुए परिक्रमा करने लगा। एकबार मैं परिक्रमा कर रहा था तो मेरे मानसपटलपर

एक विचार आया और उस मन्दिरमें दर्शन करते-करते मैंने भगवान्के सामने प्रश्न रख दिया कि हे भगवान्! कहते

हैं कि इस संसारकी सत्ता आपके चलानेसे चल रही है। जैसा कहा भी है कि 'तेरी सत्ताके बिना हे प्रभु! मंगल मूल,

**पत्तातक हिलता नहीं खिले न कोई फूल!** परंतु भगवान् मैंने पहले भी ४-५ वर्ष श्रीवृन्दावनिबहारीजीके दर्शन किये, तब और अब दो साल होनेको जा रहा है, मुझे तो कोई

भगवान् नामकी अनुभूति हुई नहीं, लोग कहते हैं कि मुझे इस प्रकारकी अनुभूति हुई, मुझे ये महसूस हुआ। मेरे साथ

इस प्रकारकी घटना हुई, मैं कैसे मानूँ कि यहाँ गोवर्धन महाराज हैं, यहाँ वृन्दावन बिहारी जी हैं, जबतक किसी भी प्रकारका कोई अनुभव न हो तबतक मैं कैसे मानूँ कि

भगवान् नामकी कोई चीज है, शक्ति है। यह कहकर मैं मन्दिरके दर्शन करके चला आया और परिक्रमा पुरी की।

जब मैं राजकीय औषधालय सान्तुरक (भरतपुर)-में कार्यरत था तब मैं साइकिलसे रोजाना ड्यूटी करने जाता था।

औषधालयकी दूरी हमारे गाँव मगोर्रा (मथुरा)-से १०-१२

छवि साइकिलपर सामनेसे चला आ रहा है, और मुझे देखकर मुसकरा रहा है, साइकिलपर उसके पैर नहीं आ रहे

हैं तो उचक-उचककर पैडल मार रहा है। जब मेरा उसका आमना-सामना हुआ तो मुझे देखकर मुसकराने लगा। मैं

अपने मनमें कह रहा हूँ कि ये बालबाबाजी हैं, इतनी ही देरमें मैं और वह आगे-पीछे हो गये। तुरंत मेरे दिमागमें विचार आया कि बृढे बाबा तो बहुत मिलते हैं, बालबाबाजी

नहीं। तेरा फर्ज तो दण्डवत् प्रणाम करनेका था, ऐसा विचार आते ही मैंने उसी क्षण तुरन्त पीछेकी तरफ मुड़कर देखा तो

सड़कको वीरान पाया, मुझे मीलोंतक कोई नजर नहीं आया। मैंने कहा, ये कहाँ गया। साइकिलसे उतरकर चला, कुछ दूर जाकर मैंने कुछ लोगोंसे पूछा; जो अपने पशुओंको चारा खिला रहे थे तथा उनके मकान भी वहाँ बने थे, मैंने पूछा

कि इधरसे एक साइकिलपर बालबाबाजी गये थे क्या? उन्होंने कहा यहाँसे कोई नहीं गया। तब उस गाँव में स्थित मन्दिरपर गया और बाबाजीसे पूछा कि यहाँ एक बालबाबाजी आये थे क्या? बाबाजीने कहा यहाँ कोई नहीं आया।

तब मैं लौट आया और अपने औषधालय चल दिया। रास्तेमें विचार करने लगा, विचार करते-करते

ध्यानमें आया कि मैं जब परिक्रमा देने गया था तो मैंने श्रीनाथजीके मन्दिरमें यह कहा था कि मैं भगवान्को क्या जानूँ, कहीं उन्होंने ही तो मुझे दर्शन नहीं दिये!

यह विचार बार-बार आनेपर सिद्ध हुआ कि वे भगवान् ही तो थे जो मुझे दर्शन देने आये थे। अब मैं अगली पूर्णिमाको फिर परिक्रमा करने गया तो, मैंने फिर उस मन्दिरमें दर्शन किये, तो क्या दर्शन हुए कि वही पीला कुर्ता, पीली धोती,

पीली पटुका (पीताम्बरी) वही शक्ल-सुरतमें दर्शन हुए,

तब मैं दर्शन करते हुए भाव-विभोर हो गया और पूर्ण आनन्दकी

अनुभूतिकर कहा कि मुझे श्रीगोवर्धन, गिरिराज महाराजने साक्षात् दर्शन दिये। मैं अपनी धृष्टता और उनकी पूर्ण कृपालुताको किमोि भी । इसिकाइ टेक्न से इंटर रेबिन सिंह : मैं अधि धुकुरा ha स्मास क्षात्र विकेश काम पार्ट पर 1 Avinash/Sha संख्या ८ ] पढ़ो, समझो और करो \* पढ़ो, समझो और करो (१) कन्याके पिताके आग्रह करनेपर भी उन्होंने कुछ भी नहीं सद्गुणवती बहु लिया। इससे मृणालिनीका क्षोभ और भी बढ़ गया। कुछ पूर्वबंगालके एक गाँवमें हाराणचन्द्र चक्रवर्ती नामक दिन तो ठीक चला। फिर मनका क्षोभ बाहर प्रकट होने एक ब्राह्मण रहते थे। उनके पुत्रका नाम था अनुकूलचन्द्र। लगा और वह शशिबालाके प्रति दुर्व्यवहार, उसके हाराणबाबू संस्कृतके विद्वान् थे, थोड़ी अंगरेजी जानते माता-पिताके लिये दुर्वचनके रूपमें उत्तरोत्तर क्रमशः थे। पर अंगरेजी शासनमें अच्छी चाकरी (नौकरी) बढने लगा। बेचारी निर्दोष सेवाशील बहुपर मिथ्या दोष पानेके लिये अंगरेजीकी आवश्यकता समझकर उन्होंने लगाये जाने लगे और बात-बातमें उसपर गालियोंकी पुत्र अनुकूलको अंगरेजी पढ़ायी। वह पहले स्कूलमें बौछार होने लगी। एक दिन मुणालिनीने एक जलती पढ़ता। फिर ढाकामें जाकर उसने एम०ए० तक कर लकड़ी उसके पैरपर दे मारी, वह दर्दसे एक बार तो लिया। हाराणबाबूकी जान-पहचान काफी थी। अत: चीख उठी, पर फिर तुरंत ही चुप हो गयी। श्रीहाराणचन्द्र कुछ प्रयत्न तथा सिफारिशसे अनुकूलचन्द्रको अच्छी अपनी पत्नीके इस दुर्व्यवहारसे बड़े दुखी हो गये। सरकारी नौकरी लग गयी। पढ़े-लिखे सरकारी नौकरके उन्होंने उसे समझानेका बहुत प्रयत्न भी किया, पर साथ अपनी कन्याका विवाह करनेके लिये चारों ओरसे मृणालिनीको वे समझा नहीं पाये। मन-ही-मन कुढ़ते कन्यावालोंकी माँग आने लगी। आखिर एक उच्च रहे अपनी पत्नीकी इस नीचतापर! कुलके किंतु निर्धन पिताकी कन्याके साथ शुभगुणसम्पन्न अनुकूलचन्द्रके दु:खका पार नहीं था। कई बार उदार हृदयके श्रीहाराणचन्द्रने अपने पुत्रका विवाह कर उसके मनमें बड़े जोरका उफान उठता, पर शशिबालाके सुधास्रावी शीतल वचन-सलिलसे वह शान्त हो जाता। दिया। बहु शशिबाला बड़ी सुन्दर, सुशीला, बुद्धिमती, विनम्र स्वभावकी और सेवाभावपरायण आयी। इससे बड़ा विचित्र स्वभाव था शशिबालाका। लगातार इतने हाराणचन्द्र बहुत प्रसन्न थे। अनुकूलको तो मानो परम भयानक अत्याचार होनेपर भी उसके मनमें कुछ भी सुखमय अत्यन्त दुर्लभ अमूल्य रत्न ही मिल गया। विचार नहीं आया। न उसके चेहरेपर ही कभी कोई उसके मनमें बड़ा आह्लाद था—ऐसी रूपगुणवती पत्नीको विकारकी रेखा प्रकट हुई। भीषण वज्राघात सहनेवाले पाकर, पर अनुकूलचन्द्रकी माता मृणालिनीको संतोष अचल अटल गिरिराजके समान वह प्रसन्नतासे सब कुछ नहीं था। वह कुछ लोभी स्वभावकी थी। उसने अपने सहती रही। पढ़े-लिखे सरकारी चाकरीमें लगे हुए गुणी पुत्रके एक दिन माताके भीषण दुर्व्यवहारसे अनुकूलचन्द्र विवाहमें बहुत बड़े दहेजकी आशा कर रखी थी और अत्यन्त दुखी हो गये और उन्होंने अलग हो जानेकी लोग देनेको तैयार भी थे; परंतु हाराणचन्द्रने केवल बात सोची। वे कुछ कड़ी बात कहने ही वाले थे कि गुणवती लड़की देखी, दहेजको ठुकरा दिया और शशिबाला उन्हें अलग ले गयी। बड़ी नम्रताके साथ पत्नीकी पूरी सम्मति न होनेपर भी उससे अनुकूलका समझाकर बोली—'आप इतने क्षुब्ध क्यों होते हो? माताजीने दहेजकी बड़ी आशा लगा रखी थी, उनकी विवाह कर दिया। मृणालिनीने समझा था कि दहेजमें कुछ तो आयेगा ही, पर शशिबालाके कुलशीलसम्पन्न वह आशा पूरी नहीं हुई। इससे उनको क्षोभ होना विद्वान् पिता ऋण लेकर या घर-द्वार बेचकर दहेज दें-स्वाभाविक ही है। कामनापर चोट लगती है तब वह यह हाराणचन्द्रको सर्वथा अस्वीकार था, इसलिये क्रोधके रूपमें प्रकट होती है एवं क्रोध एक ऐसी बीमारी

भाग ९२ है जो मनुष्यको कर्तव्याकर्तव्यके ज्ञानसे वंचित करके गुस्सेके जोशमें होश नहीं था, पैर फिसल गया और गिर उसके द्वारा उसीके अकल्याणका कार्य करवा देती है। पड़ी। बड़ी चोट लगी। साथ ही जलती लकड़ीसे उसकी माताजी इसी बीमारीसे ग्रस्त हैं, वे अपनी सहज चेतनामें साड़ीमें आग लग गयी और वह जलने लगी। शशिबाला नहीं हैं। इसीसे वे हमलोगोंके साथ अमित दुर्व्यवहारके पानीका कलसा लेकर सामनेसे आ रही थी, वह चीख रूपमें अपनी ही बड़ी हानि कर रही हैं। इस अवस्थामें सुनते ही कलसा वहीं छोड़कर भागी और उसने जाकर हम लोगोंका यह कर्तव्य कदापि नहीं कि हम अपने सासको उठाया, उसकी आग बुझायी, पर इसी बीच वह मनकी सुख-शान्तिकी आशासे उनके साथ बदलेमें बुरी तरह जल गयी थी। आग बुझानेमें शशिबालाके अनुचित व्यवहार करके उनकी बीमारीको और भी बढ़ा हाथ भी कई जगह झुलस गये, पर उसने इसकी परवा दें। हमें सब कुछ सहन करके उनका हितसाधन करना न कर सासको उठाकर अपनी गोदमें सुला लिया। तथा विशुद्ध मनसे सेवा करके उनकी बीमारीको मिटानेका मृणालिनी इस अवस्थामें कराहती हुई भी उसपर गालियोंकी बौछार कर रही थी। गालियोंके साथ ही कह प्रयत्न करना चाहिये। सेवाका आदर—सेवाका मूल्यांकन तो हो ही नहीं, सेवाको सेवा न मानकर उसे तंग करना रही थी—'तेरे ही कारण मैं गिरी, मेरे चोट लगी और बतलाया जाय और सेवाके बदलेमें तिरस्कार-अपमान. मैं जल गयी, तेरा सत्यानाश हो।' शशिबाला कुछ नहीं भर्त्सना-कुवाच्य दिये जायँ, गाली-गलौज किया जाय। बोली। वृद्ध हाराणचन्द्र नित्यकी भाँति नदी-किनारे इतनेपर भी सेवाका कार्य बिना विक्षोभ, शान्तिके साथ स्नान-भजन करने गये हुए थे। अनुकूलबाबू भाग्यसे उस चलता रहे; तभी वास्तविक सेवा होती है। पागल तो दिन घर आये हुए थे। वे दौड़े। दोनों पति-पत्नीने अपने मनकी करेगा ही, उसके बर्तावको देखनेसे काम मिलकर माँको चारपाईपर सुलाया। वैद्य बुलाये गये। चिकित्सा प्रारम्भ हुई। शशिबाला सच्चे तन-मनसे नहीं चलता। माताजी इस समय पागल-सी हो गयी हैं। वे तुम्हारी जननी हैं। तुमको उन्होंने हृदयका रस देकर सासकी सेवामें जुट गयी। दवादारू देना, पट्टी लगाना, पाला-पोसा है। अतएव वे मेरी परम पूजनीया हैं। तुम मल-मूत्र फेंकना, थूक-कफ हाथमें लेकर फेंकना, अपने एवं तुम्हारी धर्मपत्नी होनेके कारण मैं-उनके उपकार-हाथसे मुँहमें ग्रास देना, अंग दबाना—सभी कार्य वह ऋणसे कभी उऋण हो ही नहीं सकते। एक बात और बड़ी खुशी-खुशी करने लगी। घरका काम तो सँभालती है—अपमान एवं गाली लेनेसे लगती है। हम लोग उसे ही थी, पर सेवामें जरा भी त्रुटि नहीं आने दी। वह रात-दिन सासके पास ही बनी रहती। सास मृणालिनी धीरे-पुरस्कार क्यों न मानें?' इस प्रकार शशिबालाने पतिको बहुत-सी बातें धीरे ठीक होने लगी-साथ ही अब उसका हृदय भी समझाकर शान्त कर दिया और वह सब कुछ सहर्ष पलटने लगा। चार-पाँच महीने वह खटियापर रही। इसी सहन करती हुई बड़ी बुद्धिमानी तथा सावधानीके साथ बीच शशिबालाकी अकृत्रिम सेवाके कारण उसके श्वसुर-सासकी तथा स्वामीकी यथायोग्य सेवा करती हृदयमें अपनी करनीके लिये पश्चात्तापकी ऐसी भयानक रही। वह अपने स्वभावपर अटल बनी रही। पर अभी आग भडकी कि उसके हृदयकी समस्त मलराशिको इसकी तपस्याका फल प्रकट नहीं हुआ—सास मृणालिनीका जला दिया। शशिबालाकी सहज मधुर आदर्श सेवाके अमृत-रससे उसके सारे पाप धुल गये और उसके शुद्ध व्यवहार नहीं बदला। एक दिन पुनः रसोईघरमें गुस्सेमें पागल मृणालिनी हृदयमें शशिबालाके प्रति सच्चे आदर तथा स्नेहका जलती लकडी हाथमें लेकर शशिबालाकी ओर दौडी, समुद्र उमड पडा। वह अच्छी हो चली थी। एक दिन

संख्या ८ ] पढ़ो, समझं	पढ़ो, समझो और करो ४		
<u> </u>	\$		
उससे रहा नहीं गया। वह रो पड़ी और उसने शशिबालाके	परिवार पाकिस्तान पहुँच गया होगा, अब कौन उसे		
दोनों हाथ पकड़कर अपने मस्तकपर रख लिये तथा	लोटा भेजे और अब इसका तकाजा ही कौन करेगा?		
कहा—'बहू! तू लक्ष्मी है। मैं नरककी पिशाचिनी हूँ।	दिल्ली आनेपर मुझे एक मित्रके घर रहना पड़ा।		
तू मेरे अपराधोंको क्षमा कर।' बहू भी रोने लगी। आज	वहाँ कुछ ही दिनों पश्चात् वह लोटा भी चोरी हो गया		
उनके जीवनग्रन्थका एक नया मधुर अध्याय आरम्भ हो	और साथमें मेरा कुछ और सामान भी। मनमें तुरंत		
गया।	विचार आया कि भगवान्ने अनुचितरूपसे अर्जित वस्तु		
मृणालिनी शरीरसे ही अच्छी नहीं हो गयी, मनसे	ब्याजसहित वापस ले ली है। इधर उन मेरे परिचित		
भी अच्छी हो गयी। उसके व्यवहारके कण-कणमें	महोदयको भी, जिन्होंने लूटके मालसे अपना घर भरा		
शशिबालाके प्रति स्नेह-सुधा बरसने लगी। सारा घर	था, भारी हानि उठानी पड़ी। उन्होंने विदेश जाकर बहुत		
परम पवित्र तथा परम सुखी हो गया।—राखालचन्द्र बनर्जी	कमाया और वे उसे भारतस्थित अपने निकट सम्बन्धियोंको		
(२)	भेजते रहे, परंतु जब वापस आये तो उन लोगोंने कुछ		
धन पराव बिष तें बिष भारी	भी नहीं लौटाया। बेचारे अत्यन्त दुखी हुए।		
घटना उन दिनोंकी है जब स्वतन्त्रताके साथ ही	एक और घटना भी मुझे स्मरण हो आयी। देश-		
देशके दो टुकड़े भी कर दिये गये। मैं उस समय एक	विभाजनके समय ही एक मुसलमान अधिकारीने मुझसे		
राजकीय अधिकारीके रूपमें शिमलामें फागलीमें रहा	सौ रुपये उधार लिये और मुझे इतनेका ही चेक दे दिया।		
करता था। हमारे ब्लॉकमें छः परिवार रहते थे, जिनमें	चेक ले तो लिया, परंतु मुझे चेकपर विश्वास नहीं हुआ।		
एक मुसलिम-परिवार भी था। देश-विभाजनकी घोषणा	मैंने एक अन्य मुसलमान क्लर्कसे कहा कि वह मुझे सौ		
होते-न-होते जब जाति-विद्वेषकी ज्वाला भभक उठी तो	रुपये दे दे और पाकिस्तान पहुँचकर उक्त अफसरसे ले		
इस मुसलिम-परिवारको भी अपने प्राणरक्षार्थ राजकीय	ले। वह मान गया। चेक मैंने बैंकमें दे दिया था। तीन-		
शिविरमें शरण लेनी पड़ी। ये केवल कुछ आभूषण ही	चार वर्ष पश्चात् वह चेक भी स्वीकृत हो गया और मुझे		
साथ ले जा सके, शेष बहुमूल्य सामान घरमें बन्द कर	बैंकसे भी रुपये मिल गये। मानव-स्वभाव! मैंने रुपये		
गये। उनके जाते ही घरकी बारहबाट आरम्भ हो गयी।	लौटानेका कोई प्रयत्न न किया। कुछ तो आलस्य और		
मेरे एक परिचितने भी खूब चाँदी की। सौभाग्यवश में	कुछ इसलिये कि रुपया एक पाकिस्तानीका था। तीन		
इस दुष्कार्यसे दूर ही रहा।	वर्ष पूर्व यात्रा करते हुए मेरा एक बक्स चोरी हो गया।		
एक दिन मेरे एक पंजाबी मित्र मेरे घर आये और	बक्समें सौ रुपये नकद और कपड़े इत्यादि थे।		
मुझे एक बड़ा और सुन्दर लोटा देते हुए बोले कि यह	इन दो घटनाओंके पश्चात् मेरा यह अटल विश्वास		
लोटा उस मुसलिम-परिवारका है और मुझसे अनुरोध	हो गया है कि अनुचित रूपसे अर्जित धन अधिक		
करने लगे कि मैं इस लोटेको उक्त मुसलिम-परिवारके	दिनोंतक नहीं टिकता। ब्याजसिहत वापस चला जाता		
पास पहुँचा दूँ। मैंने उन्हें ऐसा करनेका आश्वासन तो	है। आज भी मैं भगवान्को धन्यवाद देता हूँ कि मैंने		
दे दिया, परंतु पहले तो उपद्रवोंके कारण और फिर बादमें	अपने घरमें लूटका माल एकत्र नहीं किया। नहीं तो, न		
दिल्लीको स्थानान्तरण हो जानेसे मैं लोटा उन्हें दे न	जाने मेरी क्या दुर्दशा होती! आशा है कि मेरे मित्र-बन्धु		
सका। फिर मनमें आया कि अब तो वह मुसलिम-	मेरे इन अनुभवोंसे लाभान्वित होंगे।—राजिकशोर शर्मा		
<del></del>	<b>&gt;</b>		

मनन करने योग्य महापुरुषोंके अपमानसे पतन

उठा ली। लेकिन वे ऋषिगण इस भयसे कि पैरोंके नीचे वृत्रासुरका वध करनेपर देवराज इन्द्रको ब्रह्महत्या कोई चींटी या अन्य क्षुद्र जीव दब न जायँ, भूमिको लगी। इस पापके भयसे वे जाकर एक सरोवरमें छिप

देख-देखकर धीरे-धीरे पैर रखते चलते थे। उधर गये। देवताओंको जब ढूँढ्नेपर भी देवराजका पता नहीं

लगा, तब वे बड़े चिन्तित हुए। स्वर्गका राज्यसिंहासन

सूना रहे तो त्रिलोकीमें सुव्यवस्था कैसे रह सकती है।

अन्तमें देवताओंने देवगुरु बृहस्पतिकी सलाहसे राजा

नहुषको इन्द्रके सिंहासनपर तबतकके लिये बैठाया,

जबतक इन्द्रका पता न लग जाय।

इन्द्रत्व पाकर राजा नहुष प्रभुताके मदसे मदान्ध हो गये। वे देवोद्यानोंमें, नन्दनवनके उपवनोंमें, कैलासमें, हिमालयके शिखरपर, मन्दराचल, श्वेतगिरि, सह्य, महेन्द्र

तथा मलयपर्वतपर एवं समुद्रों और सरिताओंमें अप्सराओं तथा देवकन्याओंके साथ भाँति-भाँतिकी क्रीडाएँ करते

थे। एक दिन उनकी दृष्टि देवराज इन्द्रकी प्रिया महारानी शचीपर पड़ी। उन्होंने इन्द्रपत्नी शचीदेवीको अपनी पत्नी बनाना चाहा। शचीके पास दूतके द्वारा उन्होंने संदेश

भेजा—'मैं जब इन्द्र हो चुका हूँ, इन्द्राणीको मुझे स्वीकार करना ही चाहिये।' पतिव्रता शचीदेवी बड़े संकटमें पड़ीं। अपने पतिकी

अनुपस्थितिमें पतिके राज्यमें अव्यवस्था हो, वह भी उन्हें स्वीकार नहीं था और अपना पातिव्रत्य भी उन्हें परम प्रिय था। वे भी देवगुरुकी शरणमें पहुँचीं।

बृहस्पतिजीने उन्हें आश्वासन देकर युक्ति बतला दी। देवगुरुके आदेशानुसार शचीने उस दूतके द्वारा नहुषको कहला दिया—'यदि राजेन्द्र नहुष ऐसी पालकीपर

बैठकर मेरे पास आयें, जिसे सप्तर्षि ढो रहे हों तो मैं उनकी सेवामें उपस्थित हो सकती हूँ।'

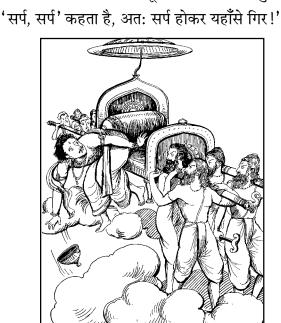
काम एवं अधिकारके मदसे मतवाले नहुषने

महर्षियोंको पालकी ले चलनेकी आज्ञा दे दी। राग-द्वेष

कामातुर नहुषको इन्द्राणीके पास शीघ्र पहुँचनेकी आतुरता

थी। वे बार-बार ऋषियोंको शीघ्र चलनेको कह रहे थे। लेकिन ऋषि तो अपने इच्छानुसार ही चलते रहे। 'सर्प! सर्प!' (शीघ्र चलो! शीघ्र चलो!) कहकर नहुषने झुँझलाकर पैर पटका। संयोगवश उनका पैर पालकी

उठे। पालकी उन्होंने पटक दी और हाथमें जल लेकर शाप देते हुए बोले—'दुष्ट! तू अपनेसे बड़ोंके द्वारा पालकी ढोवाता है और मदान्ध होकर पूजनीय लोगोंको पैरसे ठुकराकर



ढोते महर्षि अगस्त्यको लग गया। महर्षिके नेत्र लाल हो

महर्षि अगस्त्यके शाप देते ही नहुषका तेज नष्ट हो गया। भयके मारे वे काँपने लगे। शीघ्र ही वे बडे

भारी अजगर होकर स्वर्गसे पृथ्वीपर गिर पड़े। महापुरुषोंके प्रति अपमानजनक व्यवहार उनके पतनका कारण बना।

तभांतिराग्राडमान्छे।ङरिहित्य उद्धिरियणेतेराज्ञ अविकेट पुर्वुत्रवीharma | MADE WITH LOVE **। वर्ष भारता इद्योगर्**छी।

## श्रीकृष्णजन्माष्टमी एवं श्रीराधाष्टमीपर उपयोगी प्रमुख प्रकाशन

(श्रीकृष्णजन्माष्टमी २ सितम्बर रविवारको एवं श्रीराधाष्टमी १७ सितम्बर सोमवारको है।)

श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन (कोड 571) ग्रन्थाकार—इस पुस्तकमें भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसे लेकर बाल तथा पौगण्ड अवस्थाकी विभिन्न लीलाओंका बड़ा ही साहित्यिक, सरस एवं भावपूर्ण चित्रण किया गया है। राजसंस्करणमें अच्छे तथा मोटे कागजपर प्रकाशित यह पुस्तक साहित्यिक मनोभूमिको संस्कारित करनेवाली तथा श्रीकृष्ण–भक्तोंके लिये अनुपम रसायन है। मूल्य ₹१८०

कन्हैया (कोड 869), गोपाल (कोड 870), मोहन (कोड 871), श्रीकृष्ण (कोड 872)— श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके आधारपर लिखी गयी चित्रकथाकी इन पुस्तकोंको भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसे लेकर उनके परमधामगमनतककी चुनी हुई लीलाओंसे सजाया गया है। प्रत्येकका मूल्य ₹१५

पदरत्नाकर (कोड 50) पुस्तकाकार—इन पदोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंके चित्रणके साथ ज्ञान, वैराग्य, चेतावनी आदि अनेक विषयोंपर सरल काव्यात्मक प्रकाश डाला गया है। मुल्य ₹११०

श्रीराधा-माधव-चिन्तन (कोड 49) पुस्तकाकार—इसमें श्रीराधाकृष्णका अलौकिक प्रेम ही श्रीराधा-माधव-चिन्तनके रूपमें प्रस्फुटित है। भक्ति और शास्त्रीय चिन्तनके अद्भुत समन्वयके साथ यह ग्रन्थ-रत्न सात प्रकरणोंमें विभक्त है। मूल्य ₹१००

महाभाव-कल्लोलिनी ( कोड 526 ) पुस्तकाकार—इस पुस्तकमें श्रीराधाकृष्णकी विभिन्न लीलाओंसे सम्बन्धित ११६ पदोंका संग्रह है। मृल्य ₹८

मधुर ( कोड 343 )—इस पुस्तकमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्न शक्ति श्रीराधाजी एवं महाभाग गोपिकाओंके दिव्यातिदिव्य प्रेममय उदारोंका ७२ झाँकियोंके रूपमें मनोहर काव्यात्मक चित्रण है। मूल्य ₹ ३०

#### भगवन्नाम-माहात्म्यका परिवर्धित संस्करण अब सिर्फ ₹ ५ में

भगवन्नाम लेखनात्मक जपके लिये पहले यह पुस्तक (कोड 1990) मूल्य ₹१० प्रकाशित की गयी थी। इस पुस्तकमें ५६, ३०४ नाम-लेखन, भगवन्नाम-महिमापर लेख, प्रत्येक पेजपर गोस्वामी तुलसीदासकी नाम-महिमा-सम्बन्धी चौपाई और अन्तमें भगवन्नाम-महिमापर विभिन्न महापुरुषोंके विचार दिये गये हैं। अब इसमें ३६,००० नाम-लेखनकी सुविधा है। इसका (कोड 2153) मूल्य ₹ ५ पाठकोंकी मॉंगपर कर दिया गया है। आशा है पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

शिव-आराधना (कोड 2127)—आप लोगोंके सुझाव एवं शिवभक्तोंके विशेष आग्रहपर शिव-स्तुतियोंका यह लघु संग्रह प्रकाशित किया गया है। इसमें विशेषरूपसे सर्वसाधारणमें प्रचलित शिवचालीसा (जय गिरिजापित दीन दयाला) एवं शिव-आरती (जय शिव ओंकारा)-को प्रकाशित किया गया है। इसमें गीताप्रेससे पूर्व प्रकाशित शिवचालीसा एवं शिव-आरतीका भी समायोजन किया गया है। इसके अतिरिक्त शिवताण्डवस्तोत्रम्, शिवमिहम्नःस्तोत्रम् आदि स्तुतियाँ भी दी गयी हैं। आशा है, पाठक इससे लाभान्वित होंगे। मूल्य ₹७

### सितम्बर माहमें उपलब्धि सम्भावित

महाभारत (कोड 728)—हिन्दी टीकासहित, सजिल्द, सचित्र [छ: खण्डोंमें] सेट। मूल्य ₹ २२५० (प्रत्येक खण्डका मूल्य ₹ ३७५)



रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

### नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

				* * * *				
		महाभारत-सटीक ( तेलुगु )-के सभी खण्ड उपलब्ध						
कोड	खण्ड		विवरण	मूल्य ₹	कोड	ख्रण्ड	विवरण	मूल्य ₹
2141	प्रथम खप	ग्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार— आदिपर्व, सभापर्व, सचित्र,		2145	पञ्चम खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार—कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्रीपर्व,	
			सजिल्द।	४००			सचित्र, सजिल्द।	४००
2142	द्वितीय ख	ण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार—वनपर्व		2146	षष्ठ खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार—	
			सचित्र, सजिल्द।	800			शान्तिपर्व, सचित्र, सजिल्द।	४००
2143	तृतीय खप	ग्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार— विराटपर्व, उद्योगपर्व, सचित्र, सजिल्द।	४००	2147	सप्त खण्ड	( सानुवाद ) ग्रन्थाकार— अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल,	
2144	चतुर्थ खा	ਹਵ	(सानुवाद) ग्रन्थाकार— भीष्मपर्व, द्रोणपर्व, सचित्र, सजिल्द।	800			महाप्रस्थानिक, स्वर्गारोहणपर्व, सचित्र, सजिल्द।	800

उपर्युक्त सातों खण्ड एक साथ मँगवानेपर मूल्य ₹ २,८०० (रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च ₹ २६० अतिरिक्त) एवं एक खण्डका मूल्य ₹ ४०० (रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च ₹ ४५ अतिरिक्त) डाकद्वारा पुस्तकें मँगवानेके लिये आर्डर गीताप्रेस, गोरखपुर-२७३००५ (फोन नं० 0551-2334721; 2331250, website: gitapress.org) को ही भेजें। भुगतान मनीआर्डर/ड्राफ्टसे भेजें।

तेलुगु भाषाकी पुस्तकोंका मुख्य बिक्री-केन्द्र-गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक दूकान 41, 4-4-1, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार हैदराबाद-500095, मोबा. नं० 8019555962, 9573650611

नल-दमयन्ती ( कोड 2150 ) असमिया—मूल्य ₹ ६, ईशावास्योपनिषद् ( कोड 1844 ) मराठी—मूल्य ₹ १०

#### अब उपलब्ध

हिन्दू-संस्कृति-अङ्क (कोड 518)—यह विशेषाङ्क भारतीय संस्कृतिके विभिन्न पक्षों—हिन्दू-धर्म, दर्शन, आचार-विचार, संस्कार, रीति-रिवाज, पर्व, उत्सव, कला-संस्कृति और आदर्शोंपर प्रकाश डालनेवाला तथ्यपूर्ण बृहद् (सचित्र) दिग्दर्शन है। कुछ विद्वानोंने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है तो कुछने इसे 'हिन्दू-संस्कृतिका विश्वकोश' कहा है। भारतीय संस्कृतिके उपासकों, अनुसन्धानकर्ताओं और जिज्ञासुओंके लिये यह अवश्य पठनीय तथा उपयोगी दिशा-निर्देशक है। इस अङ्कमें परिशिष्टाङ्ककी सामग्री समायोजित कर दी गयी है जिससे यह और भी उपयोगी बन गया है। मूल्य ₹३००

२४ वाँ दिल्ली पुस्तक-मेला सन् २०१८—इस वर्ष भी प्रगति मैदान, नयी दिल्लीमें (दिनाङ्क २५ अगस्तसे २ सितम्बर २०१८ तक) आयोजित दिल्ली पुस्तक-मेलामें गीताप्रेसद्वारा एक भव्य पुस्तक-स्टॉल लगाकर विभिन्न भारतीय भाषाओंमें प्रकाशित अपने प्रकाशनोंके प्रदर्शन एवं बिक्रीकी व्यवस्था करनेका प्रयास है।

खुल गया है—दमदम (कोलकाता) रेलवे स्टेशन प्लेटफार्म नं० २-३ पर गीताप्रेस, गोरखपुरका पुस्तक-स्टॉल